प्रकाशक

अ० वा० सहस्रबुद्धे

मन्त्री, अ० भा० सर्व सेवा सघ,

प्रकाशन विभाग, राजघाट, काशी (बनारस)

चतुर्थ सस्करण १५,०००
मई १९५५

मूल्य : चार आना

मुद्रक

प० पृथ्वीनाथ भार्गव

भार्गव भूषण प्रेस,

गायघाट, बनारस

परिचय

"संपत्ति-दान-यज्ञ" पुस्तिका का यह चौथा संस्करण है, जो इसकी लोकप्रियता, उपयोगिता आदि का परिचायक है। जव यह पहली वार गांधी-स्मारक-निधि, मध्यप्रदेश की ओर से प्रकाशित हुई थी, तव इसका रूप छोटा था। इन तीन संस्करणो मे परिवर्द्धित-परिष्कृत होते-होते अव यह न सिर्फ अधिकृत ही हो गयी है, वल्कि अद्यतन भी। विनोवाजी के अव तक के इस विषय के विचारों का सार भी इसमें आ गया है।

इसमें संपत्ति-दान-यज्ञ पर व्यावहारिक दृष्टि से और विशेषत: संपत्तिवानो के लिए तर्कयुक्त विवेचन किया गया है। सर्वोदय-समेलन का एतद् विपयक चर्चाओ का सार भी इसमें आ गया है।

इस पुस्तिका के चार विभाग किये गये है। पहले विभाग में गांधीजी का लिखा हुआ संपत्ति-दान से सवध रखनेवाला एक लेख उद्‌धृत किया गया है। वह लेख संपत्ति-दान के लिए आधारभूत है। दूसरे विभाग में पू० विनोवाजी के अव तक के इस संवंध के लेखों व प्रवचनो से महत्त्वपूर्ण अंश संकलित किये गये है। ये अंश अलग-अलग प्रवचनों में से लिये जाने के कारण इस संकलन में विचारधारा का प्रवाह एक-सा वहता हुआ न दीखकर टुकड़ों के रूप में दीखेगा। तीसरे और चौथे विभागो का संपूर्ण विवेचन श्री जाजूजी का लिखा हुआ है। चौथे विभाग मे व्यावहारिक वातों का दिग्दर्शन है।

आशा है, इस पुस्तक से संपत्ति-दान-यज्ञ का ठीक आशय समझने में मदद होगी।

वर्धा | मन्त्री
१८-४-'५५ | अ० भा० सर्व सेवा संघ

अनुक्रमणिका

संपत्ति-दान-यज्ञ

: १ :

समान-वितरण

समान-वितरण का सही आशय यह है कि हर एक मनुष्य को उसकी स्वाभाविक आवश्यकताएँ पूरी करने की ही साधन-सामग्री मिले, अधिक नही। मिसाल के तौर पर, किसी का हाजमा कमजोर है और उसको १० तोला रोटी काफी होती ह तथा दूसर को ४० तोले रोटी की जरूरत है, तो दोनो की आवश्यकताएँ पूरी हो सकनी चाहिए। इस आदर्श को अमल मे लाने के लिए सारी सामाजिक व्यवस्था की पुनर्रचना करनी होगी। अहिंसक समाज इसके बदले किसी दूसरे आदर्श का संगोपन नही कर सकता। शायद हम इस आदर्श तक न पहुँच सकें, पर इसे सदा खयाल मे रखकर इसके नजदीक पहुँचने के लिए हमे अनवरत प्रयत्न करते रहना चाहिए। जिस हद तक हम इस आदर्श की ओर बढेगे, उतना ही हमे संतोष और सुख मिलेगा और उतनी हद तक अहिंसक समाज को अस्तित्व मे लाने की दिशा में हमारे द्वारा मदद होगी।

प्रारंभ कैसे हो ?

अब हम विचार करे कि समान वितरण अहिंसा के मार्ग से किस प्रकार हो सकता है। इस मार्ग मे, उसके लिए, जिसने कि इस आदर्श को अपने जीवन का अंग बना लिया है, पहला कदम यह है कि वह अपने निजी जीवन मे आवश्यक परिवर्तन कर ले। वह अपने दिल मे भारत

की दरिद्रता का खयाल रखकर अपनी जरूरतें कम-से-कम कर लेगा, आजीविका कमाने में बेईमानी और सट्टे को स्थान नही देगा, अपना रहन-सहन जीवन के नये विचार के मुताबिक रखेगा। उसके जीवन के हर एक क्षेत्र में सयम होगा। अपने जीवन मे जो कुछ सुधार करना शक्य है, वह कर लेने पर ही वह अपने साथी और पडोसियो में इस आदर्श का प्रचार करने लायक होगा।

धनिक संपत्ति के ट्रस्टी बनें

समान-वितरण के सिद्धान्त की जड में, नि सदेह, धनिको के पास जो अधिक सपत्ति है, उसके ट्रस्टीपन का विचार निहित है, क्योकि इस सिद्धान्त के अनुसार उन्हें अपने पडोसियो की अपेक्षा अधिक पैसा न रखना चाहिए। यह कैसे हो सकता है ? अहिंसा के मार्ग से या धनिको की सपत्ति छीनकर ? दूसरी दशा मे स्वाभाविकतया हमे हिंसा का सहारा लेना होगा। हिंसक कार्यवाही से समाज का लाभ नही हो सकता। उससे समाज दुर्बल होगा, क्योकि जो लोग सपत्ति कमाने की शक्ति रखते है, उनके सद्‌गुणो से समाज को वंचित रहना पडेगा। इसलिए साफ है कि अहिंसक मार्ग बेहतर है। धनिक अपनी सपत्ति अपने अधीन रख सकेगा, जिसमे से वह अपनी जरूरतो के लिए जितना वाजिब हो, उतने का उपयोग कर सकेगा और बाकी की सपत्ति के बारे में समाज के हित मे ट्रस्टी के तौर पर काम करेगा। इस वहम में ट्रस्टी की ईमानदारी मान ली गई है।

सत्याग्रह का स्थान

अगर हद दर्जे का प्रयत्न करने पर भी धनिक लोग सही तौर से गरीबो के सरक्षक नही बनते है और गरीब अधिकाधिक पिसकर भूख के शिकार बनते हैं तो क्या करना चाहिए ? इस पहेली को सुलझाने के

प्रयत्न मे ही मैं अहिंसक असहकार और सविनय अवज्ञा जैसे सही और अचूक साधनो पर पहुँचा हूँ। धनिक लोग गरीबो के सहयोग के विना सपत्ति इकट्ठी कर नही सकते। अगर यह ज्ञान गरीबो मे पहुँचकर फले, तो वे वलशाली वनेगे और जिन विनाशकारी असमानताओं ने उन्हे भूख से मरने की स्थिति तक ला पटका है, उनसे वे अहिंसक साधनो द्वारा मुक्ति पाना सीख लेगे।

'हरिजन', २५-८-'४० —गांधीजी

: २ :

सब संपति रघुपति कै आही

[विनोबाजी के समय-समय पर दिये गये प्रवचनो से साराश रूप में यह सकलन किया गया है।]

१८ अप्रैल, १९५१ के रोज भूदान-यज्ञ की कल्पना सूझी। अब तो देश भर में लोगो को यह कल्पना रुच गई है, ऐसा मान सकते है। भूमि-दान-यज्ञ के साथ-साथ सपत्ति-दान-यज्ञ भी क्यो न चलाया जाय, इसका मेरे मन में विचार तो चलता ही था, लेकिन भूमि का सवाल एक बुनियादी सवाल था, जिसके हल के बिना देश में मै खतरा देख रहा था। इसलिए आरम्भ में उतना ही सवाल हाथ में लेना उचित लगा। अलावा इसके, भूमि परमेश्वर की सीधी देन है, इस बात को सब कोई सहज में समझ सकते है। वह उत्पादन का मूलभूत साधन है, इसलिए भी आरभ मे भूमि तक सीमित रहना अच्छा लगा। यथाक्रम एक-एक कदम उठाना अहिसा की प्रणाली के अधिक अनुरूप था।

लेकिन भूमि-दान-यज्ञ का कार्य जैसे-जैसे आगे बढा, वैसे-वैसे सपत्ति का भी हिस्सा मांगे बगैर विचार की पूर्ति नही होती, यह बात भी स्पष्ट होती गई और आखिर मेरे मन में निश्चय हो गया कि सपत्ति का भी एक हिस्सा मै लोगो से मांगूं। मै चाहता तो हूँ कम-से-कम छठा हिस्सा, फिर लोग सोच-समझकर जो भी दे। सपत्ति चाहे हमने अपने पुरुषार्थ से कमाई हो, पर अपने लिए वह नही है, बल्कि सबके उपयोग के लिए परमेश्वर ने हमें वह सौंपी है, यह भावना इस मांग के पीछे है। जिस पुरुषार्थ-शक्ति से हमने सपत्ति कमाई, वह शक्ति भी परमेश्वर की देन है।

अपनी पैदल-यात्रा के दौरान मे मै वार-वार कह चुका हूँ कि मै पैसा लेना नही चाहता। लेकिन अव तो मै सपत्ति का हिस्सा माँग रहा हूँ। इसका मेल कैसे वैठेगा ? इसका उत्तर यह है कि न मै संपत्ति अपने हाथ में लेनेवाला हूँ, न उसकी सँभाल की, खर्च की, हिसाव की कोई चिता अपने ऊपर लेना चाहता हूँ। मै तो मुक्त ही रहना चाहता हूँ। लोकोपकार के कामो के लिए वहुत-सी निधियाँ इकट्ठी की जाती है, जिनका कारोवार सार्वजनिक समितियाँ देखा करती है। ऐसा भी करने का मेरा विचार नही है। समय-समय पर भिन्न-भिन्न कामो के लिए इकट्ठी की जानेवाली उपयोगी निधियो मे और इस सपत्ति-दान-यज्ञ मे और भी एक महत्त्वपूर्ण भेद है। वह यह कि इस यज्ञ में सपत्ति का हिस्सा हर साल देना होगा। इसलिए मैने यह सोचा है कि दाता के पास ही वह सपत्ति रहे। उसका विनियोग हमारे निर्देश के अनुसार वह करे और उसका हिसाव वह हर साल हमारे पास भेजे। इसका अर्थ यह हुआ कि देनेवाला न सिर्फ अपनी सपत्ति का हिस्सा देगा, वल्कि अपनी वुद्धि का भी उपयोग इसमे करेगा। हमारे निर्देश के अनुसार विनियोग करने की वात मैने की है, लेकिन उसमे भी वह अपना सुझाव पेश कर सकेगा।

× × × ×

अगर आमदनी के आँकड़ो के वारे मे हिसाव की कोई मुश्किल मालूम होती हो, तो मै इसमे भी संतुष्ट रहूँगा कि लोग अपने गृहस्थी-व्यय का भी एक हिस्सा दे। मानिये कि किसी के दस लाख रुपये वैक मे पडे है तो भले वे वहाँ पड़े रहें। उसमे से अगर वह घर-खर्च के लिए साल भर मे ५० हजार रुपया उठायेगा तो उसका पाँचवाँ हिस्सा याने कुल खर्च का छठा हिस्सा, संपत्ति-दान में दिया जाय, तो भी काफी होगा। घर-खर्च मे वच्चों की तालीम, प्रवास-खर्च, विवाह आदि सव

शुमार हो। छठा हिस्सा कोई न दे सके और आठवाँ देते है, या दसवाँ देते हैं, तो भी हम मान्य करते है, क्योकि हम कोई टैक्स वसूल नही कर रहे हैं। लेकिन धनिक व्यक्ति, जो घर-खर्च में साठ हजार रुपया खर्च करता हो और शताश याने छ सौ रुपया सालाना देना कबूल करे तो, वह बेकार माना जायगा। उसके लिए कुछ शोभादायक बात होनी चाहिए। इस तरह अगर सारे हिन्दुस्तान के घर-खर्च का षष्ठाश या, एक निश्चित अश, हमें मिल जाता है, तो भी सपत्ति-दान का मूलभूत विचार लोगो ने समझ लिया ऐसा होगा। दरिद्रनारायण को अपने घर में अधिकार का स्थान देना, यही मुख्य बात है।

खर्च का हिस्सा देने में यह एक कठिनाई हो सकती है कि यदि किसी को व्यापार में किसी साल घाटा आया हो, तो भी उसको सपत्ति-दान में अपना हिस्सा देना पडेगा।

जो व्यक्ति हिस्से की जगह सालाना निश्चित रकम देना चाहता है उसके बारे में यह विचार है कि जिसने १०१ रुपया देना कबूल किया, उसकी वह रकम उसके घर-खर्च का कितवाँ अंश है, यह वह बता दे तो अपना काम हो गया। इसमें इतना ही देखना होगा कि वह अश उसके लिए शोभादायक है या नही।

गृहस्थी-खर्च का भी अश हम जहाँ लेंगे, वहाँ उस खर्च का तफसीलवार हिसाब देखने की हमें कोई जरूरत नही। उसका आँकडा वह बता दे, तो भी बस होगा। अश लेने में हर साल रकम कम-बेसी होगी और इसलिए वह आजीवन भी दे सकेगा। निश्चित रकम आजीवन देना मुश्किल हो जायगा। अश देने में सहूलियत है।

× × × ×

इस यज्ञ में हिस्सा लेनेवाले अपने परिवार के साथ मशविरा करके सबके सतोष से और पूरे प्रेम से इसमें हिस्सा लें। मैं मानता हूँ कि अगर

भक्तजन इस काम मे योग देगे तो एक जीवन-विचार के तौर पर यह कल्पना देश मे फैलेगी और साम्ययोग की तरफ समाज की सहज गति होगी।

× × × ×

जाहिर है कि मैं इसमें दाता पर सारी जिम्मेदारी रख रहा हूँ और विश्वास से काम ले रहा हूँ। तार्किको का इस पर आक्षेप हो सकता है। लेकिन धर्म-बुद्धि का विश्वास ही आधार है। विश्वास से जो सरक्षण मिल सकता है, वह किसी कानूनी कारखाई से नही मिल सकता। उस दृष्टि से संपत्ति-दान-यज्ञ की यह रीति मैंने निश्चित की है।

× ⊠ × ×

संपत्ति-दान का जो मुख्य विचार है कि जो कुछ संपत्ति है, वह भगवान् की है, उस विचार की हमे स्थापना करनी है और उसका साधन सपत्ति-दान है, साधन-दान नही। साधन-दान कार्य मे मदद करनेवाला है, पर मुख्य विचार तो संपत्ति-दान का है, जो गरीब और अमीर सब पर लागू होता है। जो भी खाता है, उस पर लागू होता है। संपत्ति की प्राप्ति मे किसी पर अन्याय न हो, प्राप्ति का तरीका गलत न हो, ठीक तरीके से संपत्ति प्राप्त हो, उचित और ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा समाज को देकर जो बचे, उसका सेवन किया जाय, और जो सेवन किया जाय, वह ट्रस्टी के नाते ही किया जाय, यह सारी वृत्ति इसमे आ जाती है।

× × × ×

अस्तेय और अपरिग्रह, दोनों के मेल से अर्थ-शुचित्व पूर्ण होता है, जिसके बगैर व्यक्ति और समाज के जीवन में धर्म की प्रतिष्ठा नही हो सकती।

अर्थ-प्राप्ति की पद्धति का नियमन अस्तेय करता है, और उसकी मात्रा का नियमन अपरिग्रह करता है। अस्तेय कहता है कि शरीर का निर्वाह मुख्यतया शरीर-श्रम से, यानी उत्पादक परिश्रम से होना चाहिए। शरीर-श्रम के बगैर अगर हम अन्न खाते हैं, तो एक खतरा पैदा करते हैं।

दुनिया की बहुत-सी वर्तमान विषमताएँ, बहुत से दुःख और पाप शरीर-श्रम टालने की नीयत से पैदा हुए हैं। वैसी नीयत रखनेवाला गुप्त या प्रकट रूप से चोरी करता है। इसलिए अस्तेय-व्रत शरीर-श्रम द्वारा संपत्ति-निर्माण पर जोर देता है।

आज समाज में चोरी को पाप माना जाता है, फिर भी कुछ लोग चोरी करते हैं। पर चोरी करना अच्छा नहीं है, यह तो हमने मान लिया ही है न ? यह एक मूल्य हमारे समाज में स्थापित हो गया है। पर चोरी के समान संग्रह भी पाप है, यह अब समझना चाहिए। ये दोनों पाप हैं। अस्तेय और अपरिग्रह हमें सीखने हैं। मैं कई दफा कहता हूँ, कंजूस चोर के बाप होते हैं। अगर कंजूस और संग्रह करनेवाले न हों, तो चोरी ही न होगी।

× × × ×

अपहरण और परिग्रह

मैं जिस विचार को चलाना चाहता हूँ, उसके विरुद्ध जो विचार समाज में आज चल रहा है, उसको अपहरण कहते हैं। अपहरण के विचार में विश्वास करनेवाले मानते हैं कि आखिर व्यक्ति समाज के लिए होता है और समाज के लिए व्यक्ति की संपत्ति का अपहरण करने में कोई दोष नहीं, बल्कि व्यक्ति की सम्पत्ति के अपहरण को

रोकनेवाला विचार ही गलत है । आज उस विचार की ओर दुनिया के कई देश आकर्षित हुए हैं । उसके विरुद्ध मैं अपरिग्रह का विचार रखता हूँ । अक्सर ऐसा माना जाता है कि अपरिग्रह तो गांधीजी, विनोबा या ऐसे संन्यासियो के लिए ही है और सामान्य जनता के लिए तो परिग्रह ही है । इसलिए लोग सन्यासियो का आदर तो करते है, परन्तु कही-कही तो उन्हे अपने घर में भी प्रवेश नही करने देते । सन्यास को अन्तिम आदर्श के तौर पर मानते तो है, लेकिन गृहस्थ-जीवन मे परिग्रह ही चलता है । धर्मविचार को इस तरह खडित करने से उसका सीमित लाभ ही हो सकता था । नतीजा यह हुआ कि लोभी का मुकाबला करते समय निर्लोभी भी लोभी बन गया । क्षत्रियत्व को मिटाने के लिए खुद क्षत्रिय बनकर अपने काम मे असफल होनेवाले परशुराम का उदाहरण तो हमारे सामने है ही । जिसका मुकाबला करना है, उसीका शस्त्र हम स्वीकार कर ले, तो हम उसके स्थूल रूप को चाहे मार सकें, पर सूक्ष्म रूप में उसे अमर कर देते है । आज दुनिया मे लोभ का, परिग्रह का राज है । परिग्रह के इर्द-गिर्द ऐसे कानून खड़े किये गए है कि परिग्रह गलत नही माना जाता । चोरी को हम गुनाह मानते है, पर जो संग्रह करके चोर को प्रेरणा देता है, उसकी कृति को चोरी नही मानते । उपनिषदो की कहानी मे राजा कहता है, "मेरे राज मे न तो कोई चोर है, न कंजूस ।" क्योकि कंजूस ही चोरो को पैदा करते है ! चोरो को तो हम जेल भेजते है और उनके पिता को मुक्त रखते है ! वे शिष्ट-प्रतिष्ठित बनकर गद्दी पर बैठते है । यह कैसा न्याय है ? गीता ने भी उन्हे चोर कहा है । लेकिन हमने तो आज गीता को संन्यासियो की किताब कहकर उससे भी सन्यास ले लिया है ।

× × × ×

अपरिग्रह से सांसारिक शक्ति

खासकर हमे एक चीज देखनी है कि अपरिग्रह में शक्ति भी है। अपरिग्रह में शुद्धि है, इसका भान तो हमें रहा है, लेकिन उसमें शक्ति है इसका भी खयाल करना चाहिए। उसमें सासारिक शक्ति है जिससे उत्तम जीवन चलता है। मान लो कि गाधी-स्मारक-निधि के दस करोड रुपये इकट्ठे हुए है, उसके बदले सौ करोड इकट्ठे होते तो उससे क्या होता ? हमारी पद्धति में तो घर-घर मे बैंक हो जाता है। उसकी शक्ति की कोई सीमा नही। आदान-प्रदान भी उसमें स्थानिक ही होता है। इसलिए वह अति सुलभ योजना बन जाती है, और उसमें से सीधी सामूहिक शक्ति पैदा होती है, रचना होती है, सघटना होती है। त्याग और समता का महत्त्व हमने माना है, लेकिन ये सब शक्तियाँ है, इस दृष्टि से हमें सोचना होगा, समझना होगा।

× × × ×

समाजाय इदम्

जिस तरह हम यज्ञ में आहुति देते समय कहते है कि "इद्राय इदम् न मम—यह मेरा नही है, इद्र के लिए है" उसी तरह आज हम जो कुछ उत्पादन करते है, चाहे वह खेती मे हो, चाहे फैक्टरी में, उसके बारे मे कहना चाहिए कि "समाजाय इदम्, राष्ट्राय इदम्, न मम—यह सब मे लिए नही है, समाज के लिए है, राष्ट्र के लिए है।" अपने पास जो भी कुछ है वह सब समाज को अर्पण करना चाहिए। फिर समाज की ओर से अपनी आवश्यकता के अनुसार जो कुछ मिलेगा, वह अमृत होगा।

बचपन से हम पर अनेको के उपकार हुए है। उनसे उऋण होने के लिए शरीर-परिश्रम के मान्य तरीके से जो हमने कमाया हो, उसका

हिस्सा समाज को देना लाजमी हो जाता है। उसमे सम्यक्-विभाजन का उद्देश्य होता है।

हम छठा हिस्सा माँगते है, तो क्या पाँच-बटा-छ. का संग्रह मान्य करते है ? पर हमारे मान्य करने का सवाल ही नही है। वह भला मनुष्य छ-बटा-छ सग्रह ही मान्य कर रहा है। उसकी उस मान्यता को हम धक्का देते हैं, एक-बटा-छ माँगकर उसको हम विचार के लिए प्रेरित करते है। भक्तों ने कहा था, "जिसने 'हरिनाम' एक दफा बोल लिया, उसने मोक्ष-प्राप्ति के लिए कमर कस ली।" जिसने एक-बटा-छ समाज को निरंतर अर्पण करने का नियम, जीवन-निष्ठा के तौर पर, कबूल किया, उसने अपनी सारी संपत्ति, अपना सारा जीवन, यहाँ तक कि अपना शरीर-निर्वाह भी, समाज को अर्पित करने के लिए कमर कस ली। संपत्ति-दान-यज्ञ की तरफ देखने की यह दूरदर्शी दृष्टि है।

× × × ×

त्याग-बन्धन और भोग-बन्धन

बहुतों को यह विचार ही कठिन मालूम होता है कि जिन्दगी भर छठा या आठवाँ हिस्सा दान दे। लेकिन वे यह नही सोचते कि वे एक दफा शादी कर लेते हैं तो जिन्दगी भर के लिए ही तो अपने को बाँध लेते है ! हिंदू धर्म ने संन्यास की छूट रखी है, फिर भी जो मनुष्य गृहस्थी के आमरण बधन मे रहते है, वे इस थोडे-से देने के बंधन से भी क्यो हिचकिचाते है ? इसलिए शुद्ध विचार करनेवाले इस चीज को जीवन का अग समझ ले। जिस तरह जिन्दगी भर स्वच्छ हवा और स्वच्छ आहार हम लेते है, उसी तरह जीवन भर अपनी संपत्ति का एक हिस्सा लोगों को हमें देना है। दरअसल सारा-का-सारा ही देने

की बात होनी चाहिए, पर ट्रस्टी के नाते अपने पास वे कुछ रख ले और बाकी का सारा दे दे।

× × × ×

हम यह जो मालकियत मिटाना चाहते है, वह सविधान के विरोध में है, ऐसा लोग कहते है। हम कहते है, क्या सविधान देवो का बनाया हुआ है? जैसे-जैसे मनुष्य का विचार बदलेगा, वैसे-वैसे उसका सविधान भी बदलेगा। यह बात तो नही कि कोई चीज हम जबरदस्ती लादना चाहते है! समझाने का हमारा हक है और समझने का लोगो का कर्तव्य है। अगर वे समझ गये तो क्या उसका मतलब यह होगा कि सविधान का उन्होने विरोध किया? हम तो समझते है कि सविधान दिन-ब-दिन विकासशील होना चाहिए। मालकियत की भावना मिटनी ही चाहिए, क्योकि हमारे पास अधिक बुद्धि, अधिक शक्ति, अधिक महत्त्वपूर्ण काम है, इसलिए हमे अधिक पैसा मिलना चाहिए, यह जो पैसे का नाता जिम्मेदारी के साथ जोड दिया गया है, इसे ही हम गलत समझते है।

यह बात जिन मित्रो को हृदयगम होगी, उनसे मै आशा करूँगा कि वे चाहे गरीब हो चाहे धनी, चाहे भोगी सासारिक हो, चाहे त्यागी कार्यकर्ता, सपत्ति-दान-यज्ञ मे खुद दीक्षित हो और इस विचार का प्रत्यक्ष कृति से अधिक सशोधन करे।

मेरे काम के बारे मे किसी प्रकार की गलतफहमी न रहे। यह एक धर्म-विचार है। मनुष्य को आसक्ति से छुडाकर अपरिग्रही बनाना मेरा उद्देश्य है। इसलिए जो बडे-बडे परिग्रही है, उन्ही के पास दान माँगने के लिए पहुँचना है, ऐसी बात नही है। आसक्ति तो एक लँगोटी मे

भी रह सकती है। इसलिए हर एक व्यक्ति के पास पहुँचकर विचार समझाना है और दान-पत्र हासिल करना है।

× × × ×

संपत्ति-दान-यज्ञ वहुत गहरी चीज है। हम भूदान-यज्ञ मे हर एक से भूमि माँगते है। खास दान-पत्र लेते है, उस पर उसके हस्ताक्षर आदि लेते है, सरकार उसे मंजूर करती है, तव वह अमल मे आता है। ैसी पूरी योजना इस यज्ञ मे नही है। इसलिए जो व्यक्ति दान-पत्र लिखकर देगा, वही अपने अतर्यामी भगवान् को साक्षी रखकर अपना वचन पालन करेगा और हिसाव भी रखेगा। उस दान का पूर्ण उपयोग हमारे कहने के अनुसार करने की जिम्मेदारी उसी पर है। यह भूमि के समान एकवारगी दान देने की वात नही है। हर साल हिस्सा देना पडेगा। अत उसको अपना जीवन नैष्ठिक वनाने का काम करना होगा। अंदर की निष्ठा जगनी चाहिए।

× × × ×

"सव सपति रघुपति कै आही।" तव छठा हिस्सा देने की वात गौण है। होना तो यह चाहिए कि अपना सव कुछ समाज को देना चाहिए और फिर अपने शरीर के लिए उसमे से थोडा-सा लेना चाहिए। परन्तु अभी समाज मे इस तरह का इन्तजाम नही है और तुरन्त होनेवाला भी नही है। इसलिए अभी छठा हिस्सा दे दिया जाय और वाकी जो वचे, उसमे से और देने का सोचा जाय। छठा हिस्सा देने का मतलव यह है कि जीवन के लिए एक निश्चय करके वह देना है। उतना हिस्सा नही देते है तो हम भी पापी वनते है और हमारा जीवन भी पापी वनता है। इसलिए देना कर्त्तव्य मानना चाहिए। दूसरा कितना देता है, इनकी चिन्ता हमें नही करनी चाहिए। वल्कि स्वयं हमने कितना

दिया है, इसकी ओर ध्यान देना चाहिए। दूसरे की परीक्षा करने की यह बात नही है। यह निजी शुद्धि की और अपने कर्त्तव्य की बात है। यह आध्यात्मिक काम, आत्म-सतोष का काम है, ऐसा भान होने के बाद ही सकल्प करना चाहिए।

× × × ×

अगर हमें कोई जीवन भर छठा हिस्सा देते रहे, तो भी हम यह नही समझेंगे कि उन्होने हमारा पूरा विचार समझा ही है। अगर उनके पास कोई विशेष उद्योग है, तो जो उद्योग चलता है, उसमें काम करनेवाले, सबका साझा है। अत सबको अपना-अपना हिस्सा मिले और हिस्सा मिलने के बाद जो बाकी बचे, उसे सेवा-कार्य में दिया जाय। यह जिसने समझ लिया, सपत्तिदान का विचार समझ लिया, ऐसा होगा। इस तरह करनेवाला यदि थोडा भी खाता है तो उसका वह खाना भी यज्ञ होगा, आहुति-स्वरूप होगा। इस तरह अपना सारा जीवन यज्ञमय बनाने का विचार है और गाधीजी की तीव्रतम भावना थी कि सपत्ति का हर कोई ट्रस्टी हो। वह बात इसी से पूरी होगी। इसे हम आधुनिकतम अर्थशास्त्र समझते है, जो वास्तव में सच्चा अर्थशास्त्र है।

× × × ×

समानता की कल्पना

कारखाने के मालिक और मजदूर दोनो के हित परस्पर विरोधी क्यो समझे जायें? यह कभी देखा है कि एक अखिल भारतीय बेटो की संस्था हो, और दूसरी अखिल भारतीय बापो की? और वे दोनो सस्थायें अपने-अपने हित की रक्षा के लिए एक-दूसरे के विरोध में काम करें! आज तो शिक्षक और विद्यार्थियो के सघ बनते है, ऐसा मानकर कि

हमारे हित परस्पर विरोधी है। यह सब विपरीत बुद्धि है। आसुरी संपत्ति के लक्षण है। शारीरिक श्रम करनेवाले भी हमारी संपत्ति के सहभागी है, यह विचार हम सपत्तिवालो को समझाना चाहते है।

व्यापार में जिस प्रकार साझा होता है, उस प्रकार मजदूर और मालिक का साझा क्यो न हो ? हाँ, यह साफ है कि मै समानता की बात कर रहा हूँ। तो शहरवालों को मै यही समझाऊँगा कि ग्रामों में से आपने भर-भरकर पाया है। अत गाँववालो का भी अपनी संपत्ति म एक हिस्सा समझो। केवल एक-मुश्त दान देकर छूट जाना मत चाहो। किसी धर्मकार्य से आदमी छूटना नही चाहता। पापकार्य स छूटना चाहता है। तो मै संपत्ति-दान देनेवालो से कहता हूँ कि क्या यह पापकार्य है जो आप छूट जाना चाहते है ? इसे धर्मकार्य समझकर बार-बार करते रहे, जीवन भर करते रहे। लोग कहते है कि यह बहुत कठिन है। लेकिन मै कहता हूँ कि कठिन नही है। एक आदमी ने कहा कि हम हर महीने आपको पच्चीस रुपये देगे और जिदगी भर देते रहेगे। मैने कहा, यह ठीक नही है। अगर कल आप दरिद्र बन गये, तो आपको अपनी प्रतिज्ञा तोडनी होगी। लेकिन निश्चित रकम के बदले मे अगर आप अपना छठा या कोई भी हिस्सा देने का तय करेगे, तो उसका जीवन भर पालन करना आपके लिए शक्य होगा। फिर आपको अगर आधी रोटी ही खाने को मिली तो उसमें से भी छठा हिस्सा आप दे देगे। इस प्रकार यदि मेरा विचार समझ मे आ जाय तो उसका बोझ नही महसूस होगा। जिस प्रकार आदमी को शरीर का बोझ नही लगता, उसी प्रकार धर्म का बोझ भी नही लगना चाहिए। धर्म-विचार जीवनदायी विचार होता है।

× × × ×

सपत्तिदान-यज्ञ उतना ही गहरा है, जितना भूदान-यज्ञ। जमीन हर एक के पास नही होती, परन्तु सम्पत्ति तो हर एक के पास होती ही है और जमीन सपत्ति का ही एक प्रकार है। सपत्ति में बुद्धि, शक्ति, पैसा सब कुछ आता है।

किसी के पास कम है, तो भी हम चाहते है कि वह अपनी अपर्याप्त रोटी में से थोडी-सी रोटी गरीब के लिए दे। इसका मतलब यह है कि हम अपने घर में एक को प्रवेश देते है। इसलिए यह बहुत सोच-विचार की बात है। इसका मतलब यह होता है कि हर एक को अपना जीवन थोड़ा-सा मितव्ययी करना पडेगा। कई लोगो को तो अपने पेट में से काटकर भी कुछ देना पडेगा। वह अपने कुटुम्ब का खर्च तो चलायेगा ही, पर उसके साथ दरिद्रनारायण की भी फिक्र रखेगा। यह एक धर्म-विचार है और समझ-बूझकर इस पर अमल करना है। हिन्दुस्तान में दान की परम्परा चली आई है। भूखे को खिलाकर फिर खायेंगे, इसी को दान कहते है। इसी में हमारी खानदानी है। आज यह कुछ कम हो गया है और शहरो में तो बहुत ही कम हो गया है। लेकिन मैंने कहा है कि जो गुण आज तक व्यक्तिगत रूप मे थे, उन्हे अब सामाजिक रूप देना है।

कुछ गुणो का विकास ही नही हुआ है और वही हमें करना है। दया का विकास हुआ था, परन्तु दया का मतलब यह था कि दूसरो का दुख हमसे न सहा जाता, न देखा ही जाता था इसलिए कुछ देने की प्रेरणा हो जाती थी और ऐसे मौके पर मदद करने की स्फूर्ति हो जाती थी। यही आज तक दया का स्वरूप रहा। लेकिन अब उसे नित्य जीवन का एक अग बनाना है। जिस तरह हम रोज नहाते है उसी तरह कुछ विचारो को भी रोज अमल में लाना है। मनुष्य यह नही सोचता कि जब मै गदा हो जाऊँगा तभी नहाऊँगा, बल्कि वह रोज नहाता

है । दया को हम व्यापक करते है तो उसका विकास होता है । क्या हम अपने भाइयो पर या लडको पर दया करते है ? हम तो उनका हक मानते है और हक मानकर उन्हे जो चाहिए सो दे देते है । यह रोज करने की वात है । जहाँ दया को सार्वजनिक रूप देते है वहाँ दूसरे की चिन्ता करना आ जाता है ।

अगर समत्व का अमल करेगे तो दया आयेगी । जहाँ दया को सार्वजनिक रूप देना है वहाँ समत्व, समविभाजन आ जाता है ।

× × × ×

संपत्ति-दान का स्वरूप

यह साफ समझ लेना चाहिए कि सपत्तिदान-यज्ञ मे कोई निधि इकट्ठी करने की कल्पना नही है । इस यज्ञ की यही विशेषता है । यदि कही एक जगह निधि इकट्ठी करने की कल्पना होती, तो उसे यज्ञ नही कहा जाता । 'यज्ञ' शब्द इसमे निरर्थक नही जोडा गया है । पूरा समझ-बूझकर जोडा गया है । यह एक ऐसा विचार है कि जिससे कोई वचता नही । हर एक को इसमें आहुति देने का मौका मिलता है । जो धर्म-कार्य सवको लागू होता है, जैसे सत्य वगैरा, जो अक्षरश सार्वजनिक है, यानी सव लोगो के लिए है, उसीको मुख्य धर्म या प्रथम धर्म कहा जाता है । 'न तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्' । तो संपत्तिदान-यज्ञ आजकल की दूसरी निधियों से विल्कुल भिन्न है । उसमें हम दान-पत्र लेते है, पैसे नही । दान का विनियोग दाता खुद ही गरीवो की सेवा के लिए करता है । लेकिन गरीवो को भी वह पैसे के रूप मे मदद नही करेगा । कुछ लोगों ने यह शका उठायी है, और वह ठीक भी है कि पैसे का दुरुपयोग होगा । लेकिन संपत्तिदान मे तो किसी व्यक्ति के लिए पैसे का उपयोग होगा ही नहीं । सामुदायिक कामों के लिए हो सकता है. जैसे कुएँ के लिए सिमेट खरीद ली, या

दो-तीन किसानो को मिलाकर एक बैलजोडी दे दी । अब यह कल्पना करना कि वह बैलजोडी भी बेच देगा और फिर उस पैसे का दुरुपयोग करेगा, कुछ अधिक कल्पना है । हमारी सद्भावना से उसके हृदय में भी सद्भावना पैदा होगी, इस श्रद्धा से हम लोग चलते है । यह कोई "अंध-श्रद्धा" नही, "अनुभव-श्रद्धा" है । जब हम लोग हर गाँव में पहुँचकर घर-घर से छठा, आठवाँ या दसवाँ हिस्सा लेंगे, तब उनसे कोई पैसा तो नही लेंगे । लोग अनाज देंगे, दूसरी कोई चीज देंगे । यह जो चीजें मिलेंगी, वह भी समूह को मिलेंगी, गाँवो को मिलेंगी, और इस प्रकार गाँव-गाँव में सामूहिक लक्ष्मी इकट्ठी होगी । मै पैसा या सपत्ति शब्द इस्तेमाल नही करता, क्योकि उसमें गलतफहमी होने की संभावना है । मै लक्ष्मी कह रहा हूँ । मसलन्, बढई पाँच हल बना देगा, दूसरा कोई दूसरे साधन देगा । तो वह सब मिलाकर सामूहिक लक्ष्मी ही बनेगी । यही चीज हम गाँव में कहेंगे और यही शहरवालो को भी समझावेंगे । उनसे कहेंगे कि आपकी सपत्ति में दूसरो का भी हिस्सा है । आप अपने आपको उसका मालिक क्यो समझते है ? आप भी अपनी सपत्ति के एक हिस्सेदार ही है । ऐसा क्यो समझते है कि आपका और समाज का कोई विरोध है ?

दाता के वचन पर ही भरोसा

एक अखबारवाले ने मुझ पर व्यग्य किया था कि विनोबा को तो न जमीन चाहिए, न सपत्ति । उसे तो केवल दानपत्र चाहिए । यह तो कागज मांगनेवाला देव है । फूल से सतोप माननेवाले देवो को जिस तरह तुम फूलो की माला चढा देते हो, उसी तरह इसके गले में दान-पत्र डाल दो, तो तुम्हारी "खरचत नही गठरी भजो रे भैया राम गोविंद हरि ।" उसने तो खैर व्यग्य किया था, लेकिन दरअसल बात वही

है। हमारे दिल में उस आदमी के पैसे के बनिस्बत उसके वचन की कीमत कही अधिक है। संपत्ति-दान में आज तो यह संरक्षण है कि उसका विनियोग कैसे होगा, इसका निर्देश मैं दूंगा। लेकिन जब करोडो दान इस प्रकार मिलने लगेंगे, तब निर्देश देना भी सभव नहीं होगा, तब तो अपने आप बँटवारा होने लगेगा।

× × × ×

संपत्ति-दान-यज्ञ-मार्गदर्शन

(१) संपत्ति-दान की रकम हर एक को अपने पास ही रखनी है, या किसी परिचित के पास। (२) जो हिस्सा देना है, वह जीवन भर देना है। इसलिए परिवार के जिम्मेदार लोगो की अनुमति से यह काम होना चाहिए। (३) कर्जदार को इसमें गुंजाइश नही है। कर्ज में से मुक्त होना उसका पहला काम होगा। (४) संपत्ति का विनियोग मेरी सूचनानुसार करना है। इस सारी योजना का यह एक बहुत बड़ा सरक्षण है। (५) संपत्ति-दान-यज्ञ में प्राप्त होनेवाली उस वर्ष की रकम उसी वर्ष में खर्च होगी। बाकी रहने का कारण नही। देश मे इतना विशाल काम करना है कि कितनी भी संपत्ति मिले तो भी सारी उसमें सहज खर्च होनेवाली है। (६) संपत्ति का विनियोग फिलहाल मुख्यतया तीन मदों पर करने का सोचा है. (अ) जिन भूमिहीन किसानों को जमीन दी जायगी उनको बीज, बैल, कुआँ आदि के रूप मे मदद करना, (आ) त्यागी सेवक-वर्ग को अल्पतम सेवा-धन देना, (इ) सत्साहित्य का प्रचार करना। (७) संपत्ति-दान यज्ञ मे हिस्सा देनेवाले के जीवन का परिचय मै चाहता हूँ। उसके लिए इस यज्ञ में सम्मिलित होने की इच्छा रखनेवालों को अपनी कुछ जानकारी मुझे भेजनी चाहिए।

—विनोबा

: ३ :

संपत्ति-दान-यज्ञ

(श्रीकृष्णदास जाजू)

प्रास्ताविक

अब सारा देश भूदान-यज्ञ से परिचित हो गया है। जब कार्यकर्ता लोग जमीदारो से भूदान-यज्ञ के लिए जमीन माँगने जाते थे, तब कुछ जमीदार यह प्रश्न करते थे—जैसे हमसे जमीन माँगी जाती है, वैसे ही जो धनिक लोग है और जिनके पास करोडो की सपत्ति पडी है, उनसे उनकी संपत्ति का हिस्सा क्यो नही माँगा जा रहा है ? वास्तव में सपत्तिदान-यज्ञ भूदान-यज्ञ के गर्भ में था ही, अब तक उसने प्रकट रूप नही लिया था। दोनो यज्ञो में से प्रथम केवल भूदान का ही प्रारम्भ क्यो हुआ, इसका खुलासा पूज्य विनोबाजी ने कई बार किया है और हर कोई समझ सकता है कि जमीन का प्रश्न कुछ विशेष और निराला ही है। ईश्वर ने जमीन पैदा की, मनुष्य को भी पैदा किया, मनुष्य के जीवन का आधार जमीन ही है। पर उससे आजीविका तब ही मिलती है जब शरीर-श्रम द्वारा उससे कोई चीज पैदा की जाय। हवा और पानी की तरह जमीन पर भी किसी की व्यक्तिगत मालिकी रहना न्याय्य नही है। जमीन समाज की ही समझी जाय। ईश्वरी सकेत तो यह दीखता है कि मनुष्य जमीन पर मेहनत कर अपना जीवन चलावे और जो वैसा शरीर-श्रम करे, उसे उसका पूरा फल भी मिले। पर मनुष्य की गलत करतूत के कारण कुछ ऐसा हो गया है कि उनके पास बडी तादाद में जमीन इकट्ठी हो गई है, जो जमीन पर श्रम नही करते।

जो जमीन जोतते हैं या जोतना चाहते है, उनमें से बहुतों के पास अपने गुजारे के लिए भी मालिकी हक की जमीन नही हैं। फलस्वरूप उनको अपने श्रम के फल का एक बड़ा हिस्सा तथाकथित मालिक को दे देना पड़ता हैं। इसलिए भूमिहीनों को भूमि देने का प्रश्न पहले हाथ मे लेना उचित ही था और बहुत-से काम एक साथ हाथ मे लेने से कोई एक भी पूरा नही सधता। मनुष्य की शक्ति परिमित है, इसलिए एक काम हाथ मे लेकर उसी के पीछे पडने से उसके सफल होने की आशा रहती है। अब, जब कि भूदान-यज्ञ का काम काफी मात्रा मे चल निकला है और उसके सफल होने में शका नही रही है, तब यह बात स्वाभाविकतया सामने आती हैं कि जमीन की तरह दूसरी संपत्ति भी व्यक्तिगत माल्कियत की न मानकर समाज की मानी जाय। अर्थात् जो सिद्धांत भूदान के पीछे हैं, वही अन्य संपत्ति पर भी लागू हो। इसके अलावा जिन्हे यज्ञ की जमीन दी जाती है, उन्हे साधन-सामग्री मुहैया कर देने के लिए धन की आवश्यकता भी हैं। समय पाकर सपत्तिदान-यज्ञ का धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन भी भूदान-यज्ञ की तरह जोरों से चल पड़ेगा। अतः विनोबा ने इस विषय मे जो कुछ प्रवचन दिये हैं उनका बारीकी से अध्ययन कर लेना जरूरी है। इस पुस्तिका मे उनके प्रवचनों मे से कुछ अंश प्रारम्भ मे दिये गए हैं। मैं जब भूदान-यज्ञ के प्रचार के लिए घूमता था, तब भूदान-यज्ञ के साथ संपत्ति-दान-यज्ञ के बारे मे भी जो विचार मेरे मन मे उठे, वे इस पुस्तिका मे सक्षेप मे लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। विशेषकर मेरा निवेदन धनिक व्यक्तियों से है। प्रायः जो परम्परा चलती है, उसे हम सही मान लिया करते है। उसकी जड मे जाने का प्रयत्न नही करते। अगर उसकी जड़ की खोज करे तो शायद हमे अपने विवेक से ही मालूम हो जाय कि अब तक की मानी हुई अनेक मान्यताएँ कितनी गलत थीं। यहाँ मै कुछ विचार धनिकों के

सामने उनके चिन्तन के लिए रखता हूँ, इस आशा से कि वे खुद सोचें कि सम्पत्ति कमाने और उसे अपने पास रखने और उसके उपयोग के बारे में जो कुछ हमारे विचार बने हैं वे कहाँ तक सही हैं। इसी प्रकार के मनोमथन से मनुष्य अपनी आध्यात्मिक प्रगति करता है।

'दान' और सम्पत्ति का स्वामित्व

इन यज्ञों में जो 'दान' शब्द का उपयोग किया गया है, उसका अर्थ समझ लेना आवश्यक है। अब तक 'दान' शब्द से यही माना जाता रहा है कि एक व्यक्ति दूसरे को दया कर कुछ दे या अपने पारलौकिक कल्याण के लिए कुछ खर्च करे। विनोबाजी ने बताया है कि शंकराचार्यजी ने 'दान' का अर्थ 'संविभाग' किया है। संविभाग यानी सम्यक् विभाग—वाजिब बँटवारा, जैसा कि संयुक्त कुटुम्ब में भाइयों में हक से होता है। इस अर्थ में विनोबाजी इस शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। प्रचलित दान के अर्थ में यह बात मानी गई है कि जिस चीज का दान किया जाता है, दाता उसका मालिक है और अपने पास रखने का उसे अधिकार है। पर भूदान-यज्ञ में यह आशय है कि हमारे पास जो आवश्यकता से अधिक जमीन है उस पर हमारा अधिकार नहीं है। कई कारणों से वह हमारे पास आ गई, अब तक हमने उसे अपने पास रखा, यह भूल हुई, जिसे दुरुस्त करना है। इसी प्रकार दूसरे पक्ष में जिस भूमिहीन को जमीन दी जाती है, वह यह न माने कि दीनता या दरिद्रता के कारण जिस चीज पर उसका हक नहीं है, उसको वह दूसरों की मेहरबानी के रूप में ले रही है। उलटे यह समझकर ले कि वह पाने का उसे हक है।

अधिकार में अनधिकार कैसे ?

अभी जो संपत्ति के बारे में विचार-प्रणाली चल रही है, उसको देखते हुए ऊपर का कथन कुछ अजीब-सा लगता है। संपत्ति का मालिक

समझता है कि मैंने मेहनत करके, चाहे वह शारीरिक हो या बौद्धिक, संपत्ति कमाई, किसी की चोरी नहीं की, कानून ने जो साधन उपलब्ध कर दिये हैं, उनके अनुसार ही धन कमाया। उसे भोगने का मेरा अधिकार है। यह मेरा अधिकार कानून ने मान रखा है, समाज भी मानता है। इस दशा में उस संपत्ति पर मेरा अधिकार नहीं है, यह बात जंचती नहीं। इसी प्रकार जिसको दान मिलेगा, उसने वह जमीन या संपत्ति कमाने के लिए परिश्रम नहीं किया, उससे उसका कोई संबंध नहीं आया और कानून से उसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता, इस दशा में उसका हक है, यह बात कैसे मानी जाय ? केवल कल्पना से व्यावहारिक काम कैसे चल सकता है ? बिना कमाये किसी का किसी चीज पर हक कैसे हो सकता है, जब कि कानून उसका समर्थन नहीं करता ?

कानून और मान्यता की अपेक्षा न्याय सर्वोपरि है

हम इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करें। कानून और समाज की मान्यता का मूल्य आंकना होगा। भूलना न चाहिए कि कानून और मान्यता के अलावा न्याय भी एक चीज है, जो सर्वोपरि है। उसका अधिकार कोई मेट नहीं सकता, क्योंकि उसकी जड़ बाहर न होकर अन्तरंग में, आत्मा में, मनुष्य की सदसद्विवेक बुद्धि में है। इस संबंध में यह बात खयाल में रखनी चाहिए कि किसी समय-विशेष में समाज की या कानून की जो धारणा रहती है, वह ठीक ही रहती है, ऐसा नहीं है। कानून तो बहुधा प्रचलित परम्परा को लेकर चलता है। समाज की मान्यता भी बहुत करके रूढ़ि को लेकर चलती है। जो बात कानून या समाज मानता है, वह सदा न्याय की ही होती है, ऐसा नहीं कह सकते। दीर्घ काल के इतिहास का परीक्षण करने से मालूम होगा कि एक जमाने में जो मान्यताएं सही मानी जाती थी, उनमें समय पाकर आमूल परि-

वर्तन हो गया। मान्यताओ के वदलने के साथ कानून भी वदल गया। जव तक मान्यता चलती रही, तब तक उसके सही होने के वारे मे किसी के मन में शका नही थी, अगर थोड़ो के मन में शका रही होगी तो उसका उस समय की विचारधारा पर कोई असर नही पडा। समय पाकर विवेक जागृत हुआ, मनुष्य ने देखा कि जो बात आज मानी जाती है, वह घोर अन्याय की है। अन्त मे परिवर्तन होकर रहा। मान्यता बदलने पर राजसत्ता को कानून भी वदलना पडता है। अगर राजसत्ता वैसा न करे तो वह टिक नही सकती। विवेक जागृत होने पर अर्थात् गलती दीख पडने पर मान्यता कितनी ही पुरानी और व्यापक क्यो न हो, उसे वदलना पडता ही है। स्पष्टीकरण के लिए एक-दो उदाहरण लें।

गुलामी की प्रथा हजारो वर्षो तक और जगत् भर चलती रही। उस लवे अरसे मे विद्वान्, तत्त्ववेत्ता और सावु-सतो के रहते हुए भी वह चलती रही। एक वडे नामी तत्त्ववेत्ता ने तो उसका समर्थन भी किया था। कुछ गुलाम लोग खुद भी मानते थे कि वह प्रथा उनके हित की है। फिर भी मनुष्य का विवेक जागृत हुआ। अपने जैसे ही हाड-मास के और सुख-दुःख की भावना रखनेवालो को एक दूसरा वलवान् या धनवान् मनुष्य गुलामी मे जकड रखे, क्या यह वात न्याय्य है, ऐसा प्रश्न सामने आया। इसको हल करने के लिए आपस मे युद्ध भी हुए। अन्त मे गुलामी की प्रथा मिटकर रही। इसी प्रकार राजाओ की सस्था की वात है। जगत् भर हजारो वर्षो तक व्यक्तियो का, वादशाहो का, राज्य चला। हमारे भारत मे तो 'नाविष्णु पृथिवी-पति' तक मान्यता रही। पर अन्त मे 'क्या किसी एक व्यक्ति को करोडो आदमियो को अपनी हुकूमत में रखने का अधिकार है' यह प्रश्न खडा हुआ। उसे हल करने के लिए अनेक घनघोर युद्ध हुए और सदियो तक कहीं-न-कहीं झगडा चलता रहा। असंख्य लोगो को यातनाएँ

सहन करनी पड़ी। अंत में राज्य-प्रथा मिटकर रही और राजसत्ता प्रजा के हाथ मे आई। अब भी यद्यपि कही-कहीं जनतंत्र के नाम पर कुछ व्यक्ति अपनी अनियंत्रित सत्ता चलाने की कोशिश करते रहते है, परंतु वह बात सबको खटकती है और नि संशय मान लेना चाहिए कि अन्त में वह टिकनेवाली नही है। हमारे यहाँ की अस्पृश्यता की बात भी इसी तरह की रही। हम उसे धार्मिक भी मानते रहे। अब कानून से ही वह दडनीय है। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते है कि समय-समय पर विचारों मे बड़े-बड़े परिवर्तन हुए और हजारो वर्षो तक चलती हुई मान्यताएँ छोड देनी पडी। ऐसी ही कुछ बात संपत्ति के मालिकी हक के बारे में है।

सम्पत्ति कैसे बनती है ?

यहां थोड़ा इसका विचार कर ले कि संपत्ति बनती कैसे है ? यह खयाल गलत है कि रुपया, नोट या सोना-चाँदी का सिक्का संपत्ति है। ये तो संपत्ति के माप-तोल के साधन-मात्र है। संपत्ति वही चीजे हैं जो किसी-न-किसी रूप में मनुष्य के उपयोग मे आ सकती है। उनमें से कुछ ऐसी है, जिनके बिना मनुष्य जिन्दा नही रह सकता और कुछ सुख-सुविधा और आराम के लिए होती है। अन्न, वस्त्र और मकान मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएँ है, जिनके बिना उसकी गुजर-बसर नही हो सकती। इनके अलावा दूसरी अनेक चीजें है, जिनके बिना मनुष्य निभा सकता है। सपत्तिरूपी ये सब चीजे बनती कैसे है ? वे अपने आप तो बनती नही, न आकाश से टपकती है। कोई जन्म के साथ लाता भी नही, बल्कि जन्म के साथ तो कुछ आवश्यकताएं ही उत्पन्न होती हैं, जिनको पूरी करने के लिए निरन्तर दौड़-धूप चलती रहती है। सृष्टि मे जो नानाविध द्रव्य है, उनको लेकर मनुष्य शरीर-श्रम करता है, तब

यह काम की चीजें बनती है। अत सपत्ति के मुख्य साधन दो है सृष्टि के द्रव्य और मनुष्य का शरीर-श्रम। यत्र से कुछ चीजें बनती दीखती है, पर वे यंत्र भी शरीर-श्रम से बनते है और उनको चलाने में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष शरीरश्रम की आवश्यकता होती है। केवल बौद्धिक श्रम से कोई उपयोग की चीज नही बन सकती, अर्थात् बिना शरीर-श्रम के सपत्ति का निर्माण नही हो सकता। पर आखिर सपत्ति की मालिकी मे शरीर-श्रम करनेवालो का स्थान क्या है? जो प्रत्यक्ष शरीर-श्रम के काम करते है, उन्हें तो गरीबी में या कष्ट में ही अपना जीवन विताना पडता है और उन्ही के द्वारा उत्पादित सपत्ति दूसरे थोडे से हाथो में ही इकट्ठी होती रहती है। श्रमजीवियो की वनाई हुई चीजें व्यापारियो या दूसरो के हाथो में जाकर उनके लेन-देन से कुछ लोग मालदार वन जाते है। वर्ष भर मेहनत कर किसान अन्न पैदा करता है। वहुत दफा तो उसकी खुद की आवश्यकताएँ भी पूरी नही होती, पर वही अनाज व्यापारियो के पास जाकर उनको धनवान् वनाता है। जिन मजदूरो की मेहनत के विना कारखाना चलना ही असभव है, उनको तो विशेष प्राप्ति होने की आशा नही। अगर मजदूर योग्यता प्राप्त कर लें तो धनिको और व्यवस्थापको के विना भी कारखाना चल सकता है। अकेले व्यवस्थापक और धनिक स्वय उन्हें कदापि नही चला सकते, फिर भी उन धनिको और व्यवस्थापको को मजदूरो की अपेक्षा कितना ही गुना अधिक पैसा मिलता है। सपत्ति वनाते है मजदूर और धन इकट्ठा होता है उनके पास, जो मजदूरी नही करते। उल्टे वे मजदूरी और मजदूर को नफरत की दृष्टि से देखते है। इस प्रकार सपत्ति चद लोगो के पास इकट्ठी होती है। इन लोगो की सख्या सौ में शायद १० ही हो, जव कि शरीर-श्रम करनेवालो की सख्या करीव ९० है। इन धनिको की सपत्ति का मूल देखा जाए तो वह श्रमिक के श्रम मे या गरीव के

खीसे म ही मिलेगा। धनिकों के पास जो पैसा है, वह श्रमिक या गरीव की जेव से ही निकला हुआ पाया जायगा। गरीवों को उनके श्रम का पूरा फल नही मिलता अर्थात् गरीव के अधिक गरीव वनने पर धनिको की सपत्ति वढ़ती है। उस सपत्ति पर उनका मालिकी हक माना जाता है। कानून या सामाजिक मान्यता कुछ भी हो, पर क्या यह स्थिति न्यायोचित है ?

श्रमजीवी और बुद्धिजीवी में श्रेष्ठ कौन ?

यहाँ हम इस प्रश्न का विचार कर ले। जीवन-निर्वाह या धन कमाने के लिए अनेक धधे चल रहे है। इनके मोटे तौर पर दो वर्ग किये जा सकते है. कुछ धंधे ऐसे है जिनमें शरीर-श्रम आवश्यक है और कुछ ऐसे है जो वुद्धि के वल पर चलाये जाते है। पहले प्रकार के धंधो को हम श्रमजीवियो के धंधे कहें और दूसरों को वुद्धिजीवियो के। राजकाज चलानेवाले मंत्री आदि तथा राज के कर्मचारी ऊँचे-से-ऊँचे पद से लेकर नीचे के क्लार्क तक, न्यायाधीश, वकील, डाक्टर, अध्यापक, व्यापारी आदि धधेवाले ऐसे है, जो अपना भरण-पोषण केवल वौद्धिक काम से करते है। दूसरे वर्ग मे वे आते है जो शरीर-श्रम से अपना निर्वाह करते है, जैसे कि किसान और मजदूर, वढई, राज, लोहार, चमार, भंगी आदि। समाज के व्यवहार के लिए इन वुद्धिजीवियों और श्रम-जीवियों, दोनो प्रकार के लोगो के धंधो की जरूरत है। पर सामाजिक दृष्टि से उन धंधों के मूल्यो मे वहुत फर्क है। यह भी वहस की जाती है कि जैसे कुछ लोगों को शरीर-श्रम करना पडता है, वैसे दूसरों को वौद्धिक श्रम करना पड़ता है, वौद्धिक श्रम का महत्त्व शरीर-श्रम के जितना ही या उससे अधिक है। पर हम गहराई से सोचेंगे तो पता चलेगा कि समाज-धारणा की दृष्टि से स्थिति कुछ और ही है। कल्पना करें कि

अगर श्रमजीवी लोग अपने-अपने धंधे एकाएक छोड दे तो परिणाम क्या होगा ? मनुष्य-जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की चीजे भी नहीं वन सकेंगी, समाज जिन्दा नही रह सकेगा। दूसरी ओर अगर बुद्धि-जीवी लोग अपने धधे छोड दे तो समाज में कुछ अव्यवस्था जरूर होगी, पर समाज मरेगा नही। बुद्धिजीवियो का जीवन भी श्रमजीवियो के धधो पर अवलम्बित है। इससे कल्पना की जा सकती है कि समाज के अस्तित्व के लिए श्रमजीवियो का कितना महत्त्व है। ऐसा होते हुए भी दैवदुर्विलास यह है कि श्रमजीवियो की मजदूरी या आमदनी कम है, समाज मे उनकी प्रतिष्ठा नही और उनको अपना जीवन प्राय कष्ट में ही बिताना पडता है। बालको की शिक्षा, बीमारी में दवा-पानी, मनोरजन आदि बातें तो उनके लिए दूर की ही हैं। इसके विपरीत बुद्धि-जीवियो का वेतन या मुनाफा ज्यादा है और समाज से उन्हे बढी-चढी प्रतिष्ठा तथा ऐश-आराम भी उपलब्ध है। इस व्यवस्था में आज समाज को कोई दोष नही दीखता। कानून भी इस स्थिति का समर्थन करता है। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि क्या यह न्यायोचित है ?

अब हम मूल प्रश्न पर आ जाये।

क्या बुद्धिजीवी को अधिक धन कमाने का हक है ?

धन-सचय के और अधिक धन कमाने के पक्ष में भी कुछ बाते कही जाती है। उनका भी विचार करना चाहिए। देश और विदेश के उच्चतम विद्यालयो में लबी अवधि तक शिक्षा पाकर कोई विशेषज्ञ, जैसे कि डाक्टर, अपना धधा करने लगता है, वह सफलता से चलता है, सफलता से चलाने लायक योग्यता भी उसमे है। वह मानता है और समाज भी मानता है कि उसे अपनी योग्यता द्वारा अधिक-से-अधिक धन कमाने का अधिकार है। वह अपनी मनमानी फीस मुकर्रर करता

है। अगर कोई उसे कम फीस लेने को कहे तो वह जतलाता है कि उसने वर्षों तक कठोर परिश्रम कर और खर्च सहन कर योग्यता प्राप्त की है, तो उसे उतने ही परिमाण में मुआवजा मिलना चाहिए। बीमार गरीब हो तो कभी-कभी उसे थोड़ी राहत भले ही मिल जाए, परंतु राहत का वह हकदार नही माना जाता। इसी प्रकार जो भाई कानून, इंजीनियरिंग आदि विद्याओं मे निष्णात होते है, उनका भी यही हाल है। नामी लेखक, कवि, चित्रकार आदि कलाविदों की भी यही कथा है। ऐसा ही हक व्यापारी, उद्योगपति, व्यवस्थापक आदि जताते है।

व्यापारी और उद्योगपतियों के लिए अर्थ-शास्त्र ने यह नियम बनाया है कि खरीदी सस्ती-से-सस्ती हो और बिक्री महँगी-से-महंगी। मुनाफे की कोई मर्यादा नही। जो कारखाना मजदूरों के शरीर-श्रम के बिना चल ही नही सकता, उसके मजदूर को सौ-पचास रुपये मासिक से अधिक भले ही न मिलें, पर व्यवस्थापको और पूंजी लगानेवालों को हजारो-लाखों का मिलना आक्षेपार्ह नही माना जाता। प्रचलित विचार-धारा यह है कि बुद्धिमानों को अमर्यादित धन कमाने का और अपने पास संपत्ति इकट्ठी करने का हक है; क्योकि उन्होंने उतना धन कमाने की शक्ति और कला प्रयास द्वारा प्राप्त कर ली है। जिन्हें वैसी शक्ति या कला प्राप्त नही है, उन्हे अधिक नही मिलता या भूखों भी रहना पड़ता है तो दूसरे को दोष क्यो दिया जाय? पर इस बात पर हमारा ध्यान नही जाता कि उन गरीबो में भी बुद्धि है और उन्हे मौका मिलता तो वे भी बुद्धिजीवियों जैसी ही शक्ति प्राप्त कर सकते थे। इस बात को हम छोड़ें। यहां तो इसका परीक्षण करना है कि इन शक्तिशालियों का असीम धन कमाने का अधिकार माना जाय या नही? कल्पना कीजिये कि किसी बालक को हम उसके बिल्कुल छुटपन में ही कहीं एकांत में छोड़ दे, उसका जनता से संपर्क न आने दें, उसके रक्षण और पोषण की

व्यवस्था कर दे और उसे वैसे ही बढने दें, तो परिणाम क्या होगा ? वह बोली भी नही सीख सकेगा, अपने दिल की बात दूसरे को नही समझा सकेगा और दूसरे की वात खुद नही समझ सकेगा, व्यवहार बिल्कुल नही चला सकेगा। मनुष्य-समाज मे रहने से अर्थात् समाज की कृपा से ही मनुष्य व्यवहार चलाने लायक बनता है। बालक प्राथमिक शाला से लेकर देश-विदेश के ऊँचे-से-ऊँचे महाविद्यालयो में सीखकर जो योग्यता प्राप्त करता है, वे शिक्षालय उसके निज के नही होते है। वे या तो सरकार द्वारा चलाये जाते है, जिनका खर्च आम जनता से टैक्स के रूप में वसूल किये हुए पैसे से चलता है या दानी लोगो की कृपा से। जो कुछ पढने की फीस दी जाती है, वह तो खर्च के हिसाब से नगण्य है। विद्या पढने के लिए जो पैसा खर्च किया जाता है, वह भी उसे या उसके घरवालो को ऊपर बताये मुताबिक समाज से ही मिला है। उसको समाज का अधिक कृतज्ञ रहना चाहिए कि उस पैसे के बल पर वह विद्या पढकर योग्यता प्राप्त कर सका। इस सारी शिक्षा मे जो कुछ ज्ञान मिलता है, वह भी हजारो वर्षो तक अनेक तपस्वियो ने मेहनत करके जो कण-कण सग्रहीत कर रक्खा है, उसी के बल पर मिलता है। व्यापारी और उद्योगपति अपनी कला विद्यालयो से और अपने साथियो से प्राप्त करता है। व्यक्ति खुद अपनी बुद्धि का कुछ उपयोग तथा अध्ययन जरूर करता है, पर योग्यता प्राप्त करने में उसका खुद का हिस्सा इतना कम है कि अगर ऊपर लिखे अनुसार समाज की मदद न मिले तो वह कुछ विशेष करने लायक बनेगा ही नही। इस दशा में, जब कि अपनी योग्यता प्राप्त करने में हमारा खुद का हिस्सा अल्पतम है और समाज की कृपा का अश अत्यधिक है, तो हमें जो योग्यता प्राप्त हुई है, उसका उपयोग समाज को अधिक-से-अधिक देना और उसके बदले में समाज से कम-से-कम लेना यही न्याय्य तथा हमारा कर्तव्य माना जा सकता

है। पर चल रहा है कुछ उलटा ही। व्यक्ति, समाज को कम-से-कम देने की इच्छा रखता है, समाज से अधिक-से-अधिक लेने का प्रयत्न करता है, कुछ भी न देना पड़े तो उसे रंज नहीं होता। आखिर व्यक्ति की यह धन कमाने की शक्ति भी प्रचलित सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर ही अवलंबित है, न कि केवल उसकी इच्छा पर। अगर आर्थिक समानता का जमाना आए, जो कि कभी-न-कभी आने ही वाला है, तो हम आज धन कमाने की जिस शक्ति का अभिमान रखते है, वह पैसे के रूप मे क्या फल दे सकेगी ?

क्या आजीविका के लिए भी बुद्धि का उपयोग उचित है ?

यह एक गंभीर और बुनियादी सवाल है कि क्या बुद्धि का उपयोग पैसे के लिए करना उचित है ? यह तो साफ दीखता है कि आर्थिक विषमता का एक मुख्य कारण बुद्धि का ऐसा उपयोग ही है। शोषण भी प्राय उसीसे होता है। समाज में जो आर्थिक और सामाजिक विषमताएँ चल रही है और शोषण होकर अशांति होती है उसे मिटा के लिए जगत् मे अनेक योजनाएँ अब तक सामने आईं और इनमे से कुछ पर अमल भी हो रहा है। पर अहिंसा के द्वारा यह जटिल प्रश्न हल करना हो तो गांधीजी ने इस आशय का सूत्र बताया कि पेट भरने के लिए हाथ-पैर, और बुद्धि ज्ञान प्राप्त करने और ज्ञान देने के लिए; ऐसी व्यवस्था हो कि हर एक को चार घंटे शरीर-श्रम करना पड़े और चार घंटे बौद्धिक काम करने का मौका मिले; और चार घंटों के शरीर-श्रम से इतना मिल जाय कि उसका निर्वाह चल सके।

अभी समाज में यह चल रहा है कि बहुत से लोग अपनी आजीविका शरीर-श्रम से चलाते है और थोड़े बौद्धिक श्रम से। जिनके पास संपत्ति अधिक है वे आराम में रहते हैं। अनेकों में श्रम करने की

आदत भी नही है । इस दशा में उक्त सूत्र का अमल होना दूर की वात है । फिर भी उसके पीछे जो तथ्य है, वह हमें स्वीकार करना चाहिए, भले ही हमारी दुर्बलता के कारण हम उसे ठीक तरह से न निभा सके, क्योकि आजीविका की साधन-सामग्री किसी-न-किसी के श्रम विना वन ही नही सकती । इसलिए विना शरीर-श्रम किये उस सामग्री का उपयोग करने का न्यायोचित अधिकार हमें नही मिलता । अगर पैसे के वल पर हम सामग्री खरीदते है, तो उस पैसे की जड भी अंत में श्रम ही है। इसके अलावा हम यह भी देख रहे है कि जव वुद्धि का उपयोग समाजहित को छोडकर अपने स्वार्थ के लिए किया जाता है, चाहे वह स्वार्थ व्यक्ति का हो, जाति का हो, समूह का हो या देश का हो, उससे दूसरो को हानि ही पहुँचती है । ऐटम वम भी ऐसे ही कुछ वुद्धि के उपयोग से वना है ।

कई भाइयो का कहना है कि जैसे शरीर-श्रम का मूल्य माना जाता है, वैसे बौद्धिक श्रम का भी मानना चाहिए । उसमें भी श्रम तो करना ही पडता है, भले ही हाथ-पैर न हिलाना पडे, बौद्धिक काम करनेवालो को इतना समय भी मिलना सभव नही है कि वे उसके साथ-साथ शरीर-श्रम करके अपनी आजीविका चला सके, शरीर-श्रम करने में भी वुद्धि का उपयोग करने से अधिक सफलता मिलती है, कुछ काम ऐसे ही है, जो विद्वान् लोगो द्वारा चलाये विना चलेंगे भी नही । अल्वत्ता जव तक आज की परिस्थिति चलती रहेगी और उसमें आमूल परिवर्तन नहीं होगा, तव तक इन दलीलो को महत्त्व देना होगा । परतु हम यहां विचार वुनियादी सिद्धात का कर रहे है । व्यावहारिक दृष्टि से उसमे ढिलाई भी सहन करनी पडेगी । फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि वुद्धिजीवियो और श्रमजीवियो की आमदनी में उतना फर्क क्यो हो जितना आज है ? अगर यह कहा जाय कि वुद्धिजीवियो की

आदते, रहन-सहन ऐसी है कि अधिक आमदनी के बिना उनका निभ ही नही सकता, तो ऐसी आदते क्यों बनी ? उन्हें अब भी सुधारना संभव है या नही ? सुधारने का हम जी-जान से प्रयत्न क्यों न करें ? जब तक यह कमजोरी है, तब तक उन्हें कुछ अधिक सुविधा भले ही मिले जैसे कि परिवार मे भी कुछ कमजोरों को दी जाती है, तथापि आज की विषमता का समर्थन कैसे हो सकता है ?

धनिक ट्रस्टी बनें

कुछ भाई यह भी कहते है कि "हम अपनी सपत्ति का बहुत थोड़ा-सा अंश ही निजी काम मे लगाते है, अधिकतर अंश का उपयोग बड़े-बड़े उद्योग-धंधे, जो पूंजी के बल पर ही चल सकते है और जिनसे समाज के काम की चीजे बनती हैं उनके चलाने मे ही किया जाता है। हमारे प्रयत्न के फलस्वरूप कई लोगों को काम मिलता है और उनकी आजीविका चलती है। एक प्रकार से हम यह समाज की सेवा ही करते है। अगर व्यक्तियो के पास विपुल संपत्ति इकट्ठी न हो तो यह कैसे हो सकेगा ? समाज के बहुत से व्यवहार रुक जायेंगे।" गरीबों की आजीविका चलाने की जो बात कही जाती है, उसका उत्तर तो इतना ही काफी है कि जब उन गरीबों के बिना श्रीमानों के कारखाने या कामकाज चल ही नही सकते, तो यही मानना ठीक लगता है कि गरीब श्रमिक ही उन पर उपकार करते हैं, जिनकी सहायता से उन्हे मुनाफा होता है। अन्य कथन मे तथ्य तब होता जब कि राजसत्ता या सहकार-समितियों द्वारा ऐसे काम होना संभव नही होते। उसकी तफसील मे यहाँ न जावें। यहाँ तो धनिको की दृष्टि से ही विचार करना है। जो धनिक भाई यह कहते हैं कि उनके अधिकतर प्रयास का फल समाज की सुविधा है, उनके लिए सीधा प्रश्न यह है कि यह आपका प्रयास स्वार्थ के लिए है या समाज-

हित के लिए ? सही उत्तर तो यही होना चाहिए कि हेतु तो स्वार्थ का ही है, फिर दूसरो को कुछ लाभ मिल जाता है, तो उन दूसरो के भाग्य की वात । अगर यह उत्तर आवे कि हमारा हेतु देश-हित है तो उनका स्वागत ही है । फिर हमारा कहना इतना ही रहेगा कि वे अपने सारे काम में असलियत लावें । महात्माजी भी तो यही कहते थे न कि धनिक लोग अपनी ज्यादा सपत्ति का उपयोग समाज के हित में ट्रस्टी के तौर पर करें ? सपत्तिदान-यज्ञ और भूदान-यज्ञ का भी आखिर आशय क्या है ? अपने पास आवश्यकता से जो कुछ अधिक है, उस पर अपना अधिकार न समझकर उसका उपयोग दूसरो के लिए करें ।

दान में सदोषता

यह भी वहस चलती है कि धनिको के दान से सामाजिक उपयोग के अनेक वडे-वडे कार्य होते हैं जैसे कि अस्पताल, विद्यालय आदि । अगर व्यक्तियो के पास सपत्ति इकट्ठी न हो तो समाज को यह लाभ कैसे मिलेंगे ? वास्तव में ऐसे काम करने के लिए राजसत्ता पडी है। जव संपत्ति थोडे से हाथो में वंधी न रहकर समाज में फैली रहेगी, तो सहकार-पद्धति मे वडे पैमाने पर ऐसे काम आसानी से चलने लगेंगे और उनका लाभ लेनेवाले, याचक या दीन की तरह नही, पर सम्मानपूर्वक लाभ उठावेंगे। फिर भी धनिको की दृष्टि से भी विचार किया जाय तो करोडो की सपत्ति इकट्ठी कर उसमें से कुछ लाख दान में खर्च कर देने मात्र से दूसरो के हिस्से की चीज अपने पास वटोरने के दोप से वे मुक्त नही हो सकते । उचित या अनुचित रीति से वहुत-सा धन कमाकर उसका कुछ थोडा-सा हिस्सा दान कर देना पूरा प्रायश्चित्त नही है । और जव हम चारो ओर धनिको की दान की रीति देखते है तो उसमे शुद्ध दान कहाँ तक है, इसका पता चलाना कठिन होता है । जहां देखो वहां प्राय ख्याति या स्वार्थ

की दृष्टि ही अधिकतर देखने मे आती है। कभी-कभी दान का सौदा व्यापार के सौदे से भी अधिक कठोर होता है। एक लाख का दान करके दस लाख की कीर्ति कमाने की इच्छा रहती है। शुद्ध सात्विक दान तो विरले ही होता है।

प्रारब्धवाद

अन्य देशो मे और अन्य धर्मों में जो नही है, वह एक विशेष बात भारत में चली आ रही है। वह है प्रारब्धवाद। यह माना जाता है कि पूर्व जन्मो मे जो पुण्य किया है, उसके फलस्वरूप इस जन्म में संपत्ति और आराम मिलता है। जिन्होने पाप किया है उनको गरीबी और कष्ट भोगना पडता है। इस दशा मे कोई किसी को दोष क्यों दे ? ऐसी बहस तो चलती रहती है, पर उसमे क्या हमारी पूरी श्रद्धा है ? सच्ची श्रद्धा हो तो खेद का कारण नही दीखता; क्योकि पूर्व जन्म का इस जन्म से संबंध आता है तो इस जन्म का सम्बन्ध आगामी जन्म से निस्संदेह आना ही चाहिए। इस जन्म मे भाग्य से जो कुछ मिला तो मिला और न मिला तो न मिला, पर आगामी जन्म का प्रबन्ध करना तो हमारे हाथ मे है। आगामी जन्म में सुख-आराम मिलाना हो तो इस जन्म में हमे पुण्य-ही-पुण्य करना चाहिए। अगर यह बात व्यापक रूप से बन जाय तो फिर और अधिक क्या चाहिए ? समाज में सुख-शांति दृढमूल होगी। परंतु भाग्य के भरोसे कोई बैठा दीखता नही। हर एक जी-जान से खपकर सांसारिक झंझटें बढा रहा है। बहुतेरे संपत्ति जोड़ने मे पाप-पुण्य का ख्याल रखना भूल गए है। व्यापक पैमाने पर भ्रष्टाचार बढने की शिकायत रात-दिन हो रही है, वह किस बात की द्योतक है ? यह मानना भी गलत होगा कि यह भ्रष्टाचार या पाप गरीब ही करते है, धनिक नही करते। वास्तव में धनिको का पाप कम नही है। जब

धनिक लोग भी धन कमाने में पाप करने से डरते नही, तब हम उनका यह प्रारब्धवाद सचमुच में दिल से है यह कैसे मानें ? अगर यह प्रारब्ध-वाद चलाना ही है तो गरीब लोग भी यह कह सकते है कि अब हमारे भी भाग्य ने पल्टा खाया है और हमारा प्रारब्ध हमे सुझा रहा है कि श्रीमानो की सपत्ति लूटकर अपना भाग्य सुधारने में बाधा नही है । इस प्रकार प्रारब्धवाद दुधारी तलवार बन सकती है, और चूंकि धनिको की अपेक्षा गरीबो की सख्या बहुत अधिक है, इसलिए धनिको के लिए वह खतरनाक है । गरीबो को उनके भाग्य के भरोसे छोडना भयानक है, लबे समय तक उनकी अवहेलना हुई है । अब लक्ष्मीनारायण की जगह दरिद्रनारायण की उपासना होनी चाहिए ।

स्वार्थ का स्थान ?

अर्थशास्त्री कहते है कि व्यक्ति के स्वार्थ के लिए अवसर रखे बिना देश में उत्पादन और संपत्ति नही बढ सकेगी, किफायत भी नही होगी । माना कि मनुष्य मे स्वार्थ-वृत्ति स्वाभाविक है । फिर भी अगर धनिक लोग खुद स्वार्थ की बहस करते है तो उनके लिए इतना ही उत्तर काफी है कि अगर समाज के और व्यक्ति के स्वार्थ में विरोध हो तो व्यक्ति के स्वार्थ को महत्त्व नही दिया जा सकता । अर्थशास्त्रियो की बहस मे विपुल पूंजी का संग्रह अनिवार्य मान लिया गया है, पर सर्वोदय समाज मे पूंजी की अपेक्षा मनुष्य का स्थान सर्वोपरि है । विकेन्द्रित उत्पादन और क्षेत्र-स्वावलबन मे मनुष्य-बल और शरीर-श्रम का ही महत्त्व है । थोडी-सी पूंजी काफी है । अगर कुछ चीजो के लिए बडे कारखाने चलाने की जरूरत हो, तो वे सरकार की ओर से चल सकते है । देश में आज सरकार की ओर से उद्योग-धधे चलाने लायक स्थिति न दिखे, तो भी वैसी स्थिति लाये बिना देश का कल्याण नही है । अब तक का अनुभव

वताता है कि पूंजी गरीवी या वेकारी की समस्या हल नहीं कर सकी है। नैतिक दृष्टि से भी स्वार्थ-वृत्ति का पोषण करना योग्य नहीं है। वहुत करके स्वार्थ का अर्थ होता है परार्थ की हानि। उसी मे से स्पर्धा वढ़ती है, जिसके फलस्वरूप कुछ थोड़े-से ही लाभ उठा सकते है, वहुसंख्यकों को तो हानि ही पहुंचती है। मानवोचित सहयोग की जगह जंगल का कानून या मत्स्य-न्याय चलता है। आखिर यह देखना है कि समाज का कल्याण किस वृत्ति से होगा। अगर समाज मे स्वार्थ-वृत्ति के लोग अधिक हों तो क्या कल्याण की आशा रखी जा सकती है? समाज ऊँचा तो परोपकार-वृत्ति के वल पर ही उठ सकता है। संपत्ति वढ़ाने के लिए स्वार्थ का आधार दोपास्पद है।

दाता को दीन बनना पड़े तो ?

अर्थ-नीति के वारे मे कुछ भाई अमेरिका का उदाहरण पेश करते हैं। भारत को कल्याणकारी (वेल्फेयर) राज वनाने की वात चल रही है। कल्याण-राज का अर्थ यह समझा जाता है कि सव तरह के दुर्वलो को राज्यसत्ता द्वारा मदद मिले अर्थात् वडे पैमाने पर कर वसूल करके उससे गरीवो को सहारा दिया जाय। भारत जैसे दरिद्र देश में क्या इस वात का वन आना संभव है? इसके अलावा स्वास्थ्य और शिक्षा के वारे में राज की प्रणाली कल्याणकारी हो, यह वात तो कुछ समझ में आ सकती है, परन्तु आर्थिक वातों मे अर्थात् पेट भरने के विषय में मनुष्य, राज के भरोसे रहे, यह वात कहाँ तक ठीक है? प्राथमिक आवश्यकताओं के वारे मे मनुष्य अपने पैर पर खड़े रहने के लायक हुए विना स्वतंत्र नहीं रह सकता, किसी-न-किसी प्रकार उसे पराधीन रहना होगा। अमेरिका जैसे देश का उदाहरण हमारे काम नहीं आ सकता। वहाँ सारे जगत् ने संपत्ति वटोरी जाकर इकट्ठी हुई है, गरीबों को भी

काफी आराम मिल जाता है। वह मिसाल आज की दशा में या जहाँ तक भविष्य देख सकते है वहाँ तक हमारे किस काम की ? हमारे यहाँ हर साल कही-न-कही करोडो लोगो को अकाल की-सी दशा में से गुजरना पडता है। अनाज के भडार भरे रहते हुए भी कुछ प्रातो म वडी तादाद में लोगो को भुखमरी सहन करनी पडती है। गरीबो के पास अनाज खरीदने के लिए पैसा नही रहता। काम करने का अवसर नही है, इसलिए पैसा नही मिलता। घनिको के केन्द्रित उद्योगो के कारण वेकारो को ग्रामोद्योग मुहैया नही किये जा सकते। यह सही है कि अकाल की-सी दशा में कल्याण राज की तरह सरकार और दानी लोग उनको राहत पहुँचाने की कुछ व्यवस्था करते है। पर क्या वह पर्याप्त है ? उस दृश्य का चित्र आँख के सामने लाइये कि कुछ लोग भूखो के वीच काजी वितरण कर रहे है और कुछ काजी ले रहे है, कुछ दयालु कपडा वाँट रहे है और कुछ अघनगे कपडा पा रहे है। ऐसे फोटो अखवारो में छपते भी है। पर क्या ये दृश्य मनुष्य के हृदय में व्यथा पहुँचानेवाले नही है ? एक व्यक्ति चीज वाँटने की दशा में रहे और दूसरा लेने की विपन्नावस्था में ! इसका ठीक मर्म तो तव ही समझ में आयगा जव वाँटनेवालो को कभी ऐसी चीजें माँगने के लिए दीनता से अपना हाथ पसारना पडे। स्वराज्य मिल जाने के वाद भी यह कव तक चलता रहेगा ? हर एक को यथोचित खाना, कपडा और मकान मिल जाने के वाद अगर कुछ वचे तो घनिक लोग भले ही उसे अपने पास रखें। उसमें भी आपत्ति तो है ही। जव तक गरीवो की सँभाल ठीक-ठीक नही होती है तव तक धनिको को वेचैन रहना चाहिए। महलो में रहनेवालो को सोचना चाहिए कि उनके महलो के सामने ही फुट-पाथ पर वेघर-वारवालो को रात-दिन अपना जीवन क्यो विताना पड़ता है, मोटर में वैठकर जानेवालो को सोचना चाहिए कि उसी सडक पर से

साठ-सत्तर वरस के स्त्री-पुरुषो को सिर पर लकड़ी की मोली या घास का गट्ठर लेकर कोसों पैदल क्यो चलना पड़ता है ? ऐसी वातों का विचार करते रहने से अपने पास अधिक संपत्ति रखने का अधिकार है या नही, इस प्रश्न पर काफी रोशनी पड़ेगी ।

देश को परिवार समझें

मानिये कि एक परिवार में पाँच व्यक्ति हैं, उनको पेट भरने के लिए चार सेर अनाज की जरूरत है । अगर पूरा चार सेर अन्न मिल जाता है तो सव पेट भर खायेंगे । अगर तीन ही सेर मिले तो क्या करेंगे ? क्या एक-दो को भूखा रखकर वाकी सव पेट भर खा लेंगे ? परिवार मे ऐसा नही होता । अगर जरूरत से कम मिलता है तो सव ही थोड़ा-थोडा कम लेकर निभा लेते है । वालक और कमजोरों का ख्याल पहले किया जाता है । सामाजिक दृष्टि से यही न्याय समाज के सव व्यक्तियो पर लागू होना चाहिए । राज्यकर्ताओ की और समाज की दृष्टि में सारा देश एक परिवार है । अगर देश में संपत्ति पर्याप्त है तो सब पूरी भोगे । सम्पत्ति कम रहने की दशा में हर एक को कुछ-न-कुछ कष्ट सहने को, त्याग करने को तैयार रहना चाहिए । धर्म भी यही वात सिखाता है । हमारी जवान पर तत्त्वज्ञान के विचार समय-वेसमय आते रहते है । अपने-पराये का भेद गलत है, सव में आत्मा समान है, ईश्वर ने सव को पैदा किया है, हम सव भाई-वहन वरावर है, इत्यादि । इन सही विचारों से आचरण का सदा मेल वैठाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए ।

शरीरश्रम से नफरत

शरीरश्रम के वारे में हमारी सामाजिक विचारधारा में एक वड़ा भारी दोप है जो शायद दूसरे देशों में नही मिलेगा । हम शरीरश्रम

करना नही चाहते । इतना ही नही, वरन् उसे नफरत की नजर से देखते है और जिनको शरीरश्रम करना पडता है, उन्हे समाज में हीन दर्जे का मानते है । श्रीमान् या गरीब, कोई भी श्रम करना नही चाहता । धनिक अपने पैसे के बल से नौकरो द्वारा अपना काम चला लेता है । गरीब भूख की लाचारी से श्रम करता है । हमें यह वृत्ति बदलनी चाहिए । शरीरश्रम की केवल प्रतिष्ठा स्थापित कर सतोप नही मानना है, उसके लिए हमारे दिल में प्रीति होनी चाहिए । धनिक और मध्यम वर्ग के लोगो को दूसरो के लिए शरीरश्रम का उदाहरण पेश करना चाहिए ।

आर्थिक विषमता हटे बिना चारा नहीं

पहले बताया जा चुका है कि शरीरश्रम के बिना सपत्ति नही बनती, अर्थात् धनिको के पास जो सपत्ति इकट्ठी होती है, वह गरीबो के शरीर-श्रम का ही फल है । इसके अलावा गरीबो के सहयोग के बिना धनिक लोग संपत्ति कमा नही सकते, अपने पास रख नहीं सकते और उसका उपयोग या उपभोग भी नही कर सकते । न्याय की दृष्टि से इस निर्णय पर पहुँचना पडता है कि आवश्यकता से अधिक सपत्ति रखने का और निज के लिए कमाने का किसी व्यक्ति को अधिकार नही है । यह प्रश्न उठ सकता है कि आवश्यकता कितनी मानी जाय ? मनुष्य-मनुष्य के नाते इसमे बहुत फर्क नहीं पडना चाहिए । बीमार और स्वस्थ, बालक और युवक और अपनी-अपनी विभिन्न आदतो के कारण भी कुछ फर्क जरूर पड़ सकता है और उसे मानना भी चाहिए । अगर न्याय की दृष्टि से देखे तो आवश्यकताओ के बारे में निर्णय करना मुश्किल नही है । परतु समस्या तब जटिल होती है, जब अपना स्वार्थ, सासारिक मोह, धन में आसक्ति, आदि दोष खेल खेलने लगते है । आवश्यकता के

प्रश्न पर यहां अधिक गहरे जाने की जरूरत नही है। हमारे लिए इतना काफी है कि अभी की सामाजिक और आर्थिक घोर विषमता न्यायोचित नही है। उसे वदलना चाहिए। यह जमाने की मांग टाली नही जा सकेगी। इस प्रकार की विषमता हर जगह चलती रही है, हजारों वर्षों तक चली। साधु-संतो ने, सव धर्मवालो ने सदा आदेश दिया है कि गरीवो का खयाल करो, अपने पास जो ज्यादा है उसे दूसरों को दो। दान, धर्म, खैरात की प्रणाली चल रही है, तथापि गरीवी का प्रश्न हल नही हुआ। ऐसे उपायो से हल होता दीखता भी नही। अव कुछ समय से जगत् के सामने दया की जगह समता का विचार आया है। पूरी सोलह आना समता आना संभव न हो, तथापि अभी की विषमता तो कदापि सहन न होनी चाहिए। यह विषमता कैसे दूर हो? कही-कही लोगों ने हिंसा का मार्ग ग्रहण किया। उसमे से अनेक वुराइयां निकली जो अव तक दूर नही हो सकी है। विषमता दूर करने मे कानून भी कुछ मदद देता है। भारत मे कुछ अंश मे कानून का ऐसा चक्र चालू भी हो गया है। परंतु कानून से मानवोचित गुणो का, सद्भावना का विकास नही हो सकता। महात्माजी ने हमे जो अहिंसा की विचारधारा दी है, जिसका हमने कुछ अनुभव भी कर लिया है तथा भारत की परंपरा का खयाल करते हुए यह संभव दीखता है कि विषमता का प्रश्न वहुत कुछ हद तक अहिंसा के मार्ग से हल हो सकना संभव है। इसमें धनिकों से पूरा सहयोग मिलना चाहिए। उनके दिल मे परिवर्तन होना चाहिए। इसका असर कानून वनाने की शक्ति पर भी पड़ेगा और हमारे सव कार्य-क्षेत्रो में, समाज मे सद्गुणो का विकास होगा। जैसे राजनैतिक स्वराज्य का प्रश्न काफी हद तक अहिंसा के मार्ग से सुलझा, वैसे ही आर्थिक और सामाजिक समता का प्रश्न भी भारत मे अहिंसा के मार्ग से सुलझेगा, ऐसी हम श्रद्धा रखें। विनोवाजी द्वारा चलाये हुए भूदान-

यज्ञ और सपत्ति-दान-यज्ञ में हम सब छोटे-बडे, अमीर-गरीब, तहेदिल से सहयोग दे ।

गरीबों से भी दान क्यों ?

भूदान-यज्ञ में वडे जमीदारो से विशेष अधिक मात्रा में जमीन मिलने की आशा रखी गई है, साथ ही थोडी जमीनवालो से भी कुछ-न-कुछ जमीन मांगी जा रही है । अनुभव यह रहा कि तुलनात्मक दृष्टि स थोडी जमीनवालो की उदारता विशेष रूप से प्रकट हुई । भूदान की तरह सपत्ति-दान में भी छोटे-वडे सबसे अपेक्षा रखी गई है कि वे अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार अपनी आमदनी का कुछ हिस्सा दें । यह शका की जाती है कि जिनके पास पांच-दस एकड से ज्यादा जमीन नही है, उनसे भी क्यो मांगी जा रही है ? वैसे ही जिनकी आमदनी इतनी कम है कि उनको गरीवी से भी गुजर करना मुश्किल है तथा यह चिंता रखनी पडती है कि किसी प्रकार थोडी-सी भी अधिक आमदनी हो, उनसे भी सपत्ति-दान में कुछ-न-कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा क्यो रक्खी जा रही है? एक तो दान देने में किसी पर जवरदस्ती नही है, वह स्वेच्छा पर अवलम्बित है । देनेवाला अगर प्रसन्नता से देता है तो दान क्यो न लिया जाय ? यज्ञ में हविर्भाग देने के लिए गरीव-अमीर सवको निमत्रण ह । ऐसे विश्व-यज्ञो में सवका योग आवश्यक है । बहुत दफा जव गरीव लोग दान देने का सिलसिला शुरू कर देते है, तो फिर धनिक भी उसमे शामिल हो जाते है । वास्तव में इस विषय में तो धनिको को नेतृत्व करना चाहिए । पर उनको जो जमीन या सपत्ति देनी पडे, उसकी तादाद वडी होने के कारण और अधिक चीज में आसक्ति भी अधिक होती ह, इसलिए, धनिको को अपने दिल को समझाकर निर्णय करने में कुछ देर लगती है । अत गरीव हो या अमीर, सवको उत्साहपूर्वक

दान करने को तैयार रहना चाहिए। इन यज्ञो मे हविर्भाग देने के लिए सबको निमंत्रण देने का यह भी एक कारण है कि अभी समाज मे स्वार्थ-वृत्ति वढकर जो भ्रष्टाचार चल रहा है उस पर कुछ पाबंदी लगे। जो इन यज्ञों में हिस्सा लेगा, वह अपने दिल मे शुद्धता-अशुद्धता का विवेक जरूर रखेगा। स्वार्थ-वृत्ति गरीव-अमीर सबमें है। जरूरत है कि सबका मानस सुधरे। स्वार्थ-वृत्ति घटे बिना समाज का उत्थान नही होगा। दान में सब लोग हिस्सा लेगे, तो राष्ट्रीय जीवन शुद्ध होगा। छोटे-बडे सबका एक-दूसरे पर असर पड़ता है। अवगुणों की तरह गुण भी मनुष्य दूसरों को देखकर सीखता है। सब आर्थिक समता तथा शरीर-श्रम और स्वावलवन का महत्त्व समझें, हर व्यक्ति दूसरो के सुख-दु ख की चिंता रक्खे, एकता की भावना बढे, सबका स्वार्थ घटे इत्यादि गुणों के विकास के लिए आवश्यक है कि छोटे-बड़े सब इन यज्ञो में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार योग दें।

धन की लालसा कम हो

वास्तव में गरीबों को तो मदद ही पहुंचनी चाहिए। ये यज्ञ उनको मदद पहुँचाने के लिए ही है। फिर भी उनसे भी, किंचित् ही क्यो न हो, कुछ-न-कुछ माँगा जा रहा है। क्योकि उनमें भी धन की लालसा का कम होना आवश्यक है। आज तो गरीबो को भी हमारी आर्थिक व्यवस्था का मूल दोष मालूम नही है। अगर उन्हे धनिक होने का मौका मिले तो वे उसका लाभ उठाना चाहेंगे। कोई धनिक हो या गरीब, या मध्यम वर्गीय, सबको धनिक बनने की लालसा सता रही है। जो धनिक नही है और धनिको को दोष देते रहते है, वे भी धनिक बनने की लालसा तो रखते ही है। चारों ओर धन के लिए दौड़-धूप मची हुई है। कार-खानो में मालिक और मजदूरो के बीच सदा झगड़े होते रहते है।

गरीबों और मजदूरों की दशा सुधारना तथा उनकी आय बढाना आवश्यक तो है ही, परन्तु उनका ध्यान अपना सुधार करने की अपेक्षा अधिक पैसा कमाने की ओर ही अधिक है। देश में खुद की अपेक्षा दूसरे अधिक गरीब लोग भी है और उन कारखानों के कारण ही दूसरो में बेकारी बढ रही है, इस ओर उनका ध्यान नही है। मालिकों की तरह मजदूर भी कारखानों में अधिकाधिक मुनाफे का स्वागत करते है, क्योकि उस मुनाफे में से उनको भी कुछ हिस्सा मिल जाता है। इस तरह कारखानों में चीजों का उपयोग करनेवाले गरीबों के हित की अपेक्षा मुनाफे की दृष्टि ही अधिक रहती है। समाज के सब वर्गों में पैसा कमाने की लालसा को लगाम लगाने की जरूरत है। इस तत्त्व को समझकर हर एक में त्याग-वृत्ति का विकास होना चाहिए। ये यज्ञ इसमें मदद करेंगे। समझ-बूझकर अंत करण में अगर ऐसा परिवर्तन होगा और चारों ओर ऐसी हवा फैलेगी, तो धनिक लोग भी उससे अछूते नही रह सकेंगे।

संपत्ति-दान-यज्ञ में गरीब योग क्यों दें ?

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारत बहुत गरीब देश है। यहाँ धनिक कहलाने योग्य तो लाखो मे एक-आध ही मिलेगा। खा-पीकर सुखी तो शायद फी सदी दस ही हों। बाकी नब्बे प्रतिशत लोग गरीब है। ये गरीब लोग प्राय उत्पादक श्रम करके जैसे-तैसे मुश्किल मे अपना निर्वाह कर पाते है। उनको अपना जीवन काफी कष्ट मे बिताना पडता है। अगर देश में गरीबी है, तो सबको गरीबी सहन करने को तैयार रहना चाहिए। यह न्याय की बात नही है कि एक ही देश में रहनेवाले चंद लोग तो ऐश-आराम और चैन में रहें और बहुत सारे गरीबी की यातना भोगते रहें। इसके अलावा, जब स्थिति यह है कि धनिकों की अमीरी गरीबों के शरीर-श्रम पर ही अवलंबित है, तो यह अन्याय असहनीय होना चाहिए।

यज्ञ में सबका हविर्भाग

ऐसे एक उद्देश्य को लेकर विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ तथा संपत्ति-दान-यज्ञ चलाये है। इस उद्देश्य की सफलता के लिए आवश्यक है कि इन यज्ञो को आदोलन का स्वरूप प्राप्त हो और वे बड़े व्यापक पैमाने पर चलें। अगर फी सदी नब्बे गरीब लोग इन यज्ञों मे शरीक नही होते है, तो विचार व्यापक नही हो सकता और समाज की विचार-धारा भी नही बदल सकती। इसलिए अमीर-गरीब, सबको इन यज्ञों में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार आहुति डालनी ही चाहिए।

सब कैसे शामिल होंगे ?

त्याग, यज्ञ का मुख्य अग है। स्वार्थ-त्याग किये बिना देश ऊंचा नही उठ सकता। हम समाज-हित के लिए अमीरों को त्याग करने को कहे और नब्बे फी सदी गरीब लोग कुछ भी त्याग न करे, तो गरीबों को धनिको से त्याग करने के लिए कहने का हक नही पहुँचता। खुद स्वार्थी बने रहकर दूसरो को त्याग करने के लिए कहने से कोई ठीक परिणाम नही निकल सकता। हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि देश मे केवल धन-संपत्ति का हस्तांतर नही करना है। मनुष्य का स्वार्थ और लोभ छुड़ाना है। उसके अंत करण की शुद्धि करनी है, ताकि उसके पास जो कुछ साधन-सामग्री है, उसका वह सदुपयोग करता रहे, समाज को अपने हृदय में स्थान दे, दूसरों को सहयोग दे और उनको मदद करने की वृत्ति बढ़ावे। बहुसंख्य गरीब लोगो द्वारा इन आंदोलनों मे भाग न लेने से ऐसी हवा निर्माण नही हो सकती कि जिससे परिस्थितिवश सबको इनमे शामिल होना पड़े। इसलिए कार्यकर्ताओं का यह विशेष प्रयत्न होना चाहिए कि गरीब भी इन आंदोलनों मे हाथ बँटावे।

समाज के आधार : श्रमिक

लेकिन जैसे विद्वान लोग अपनी विद्या का मूल्य पैसे में आँकते है, वैसे श्रमजीवी भी अपने श्रम का मूल्य पैसे-टके में ही आँक रहे है। परिणाम यह हुआ है कि पैसे के लिए सबकी घुड-दौड हो रही है। श्रमिक भी कर्तव्यपरायण नही रहा है। श्रम की प्रतिष्ठा बढाना उसीके हाथ है। जिस श्रम में समाज को जिदा रखने की क्षमता है, उस श्रम का सही मूल्य अगर वह जान लेगा, तो देश में आर्थिक क्राति होने में देर नही लगेगी। अगर गरीब लोग, जो प्राय श्रमजीवी ही है, भूदान और सपत्ति-दान-यज्ञ का सिद्धात समझकर दिल से उनमें हिस्सा लेगे, तो उनका तेज प्रकट होगा और उनको समाज में, उनके योग्य महत्त्व का स्थान प्राप्त होगा। उन्हें अपनी शक्ति का भान तो हो, पर अगर उनमें कर्तव्य की जागृति न हो, तो वह कर्तव्य-विहीन शक्ति उनकी आसुरी सपत्ति होगी, जिससे समाज को आज भी हानि पहुँच रही है, भविष्य में भी पहुँचती रहेगी। यज्ञो में भाग लेने से उनकी त्यागवृत्ति बढेगी और उन्हे कर्तव्य का भी ठीक-ठीक भान होगा।

गरीब दूसरे गरीब का खयाल करें

गरीबी-गरीबी में फर्क है। कुछ खाने तक को न मिलने के कारण मजबूर होकर दर-दर भटक रहे है। कुछ अधभूखे रहकर ही जिदा रहते है और कुछ अपना काम तगी से चलाते है अथवा किसी प्रकार निभा लेते है। जो इस प्रकार दुख भोग रहे है, उनको गरीबी के अनुभव के कारण दूसरे गरीबों के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए। परतु प्राय हर एक दूसरे की कोई परवाह न कर अपने ही स्वार्थ में लगा है। अपने-अपने भिन्न-भिन्न कार्य-क्षेत्रो के कारण श्रमजीवियो के समाज में

अनेक तबके खड़े हो गये है। उनमे से कुछ का जहाँ कुछ संगठन हो गया है, जैसे कि बड़े कारखाने, रेल्वे, पोस्ट-ऑफिस आदि क्षेत्रो मे, वहाँ वे हडताल आदि द्वारा समाज को अड़ाकर अपनी-अपनी आमदनी बढाने की सदा कोशिश करते रहते है। करोड़ों देहात में बसनेवाले गरीब भूमिहीनो की ओर उनका ध्यान नही जाता, जो उनसे कितने ही अधिक गरीब है और कष्ट भोग रहे है। देश की संपत्ति तो मर्यादित है। अगर कुछ लोगों की ही आमदनी बढती रहे, तो दूसरो की गरीबी बढेगी। अमीर लोग भी अधिक धन बटोरते है, तो उसका भी परिणाम यही होता है। इसलिए जिनके पास जो कुछ है, थोडा या अधिक, उनका यह कर्तव्य है कि वे अपने से जो अधिक गरीब है, उनकी ओर ध्यान देवें और उनकी मदद करें। ऐसा हुए विना समूचे समाज का हित नही सध सकता।

गरीब का दान अपनी मर्यादा में ही

ये यज्ञ गरीबो की भलाई के लिए है। लेकिन उनका कल्याण तभी हो सकता है, जब हर गरीब दूसरो की भलाई सोचे और खुद भी कुछ त्याग करे। चूंकि गरीबो के पास विशेष कुछ है नही, इसलिए उनके त्याग की मात्रा नाममात्र की ही हो सकती है। परतु वह त्याग, दिल मे समाज को स्थान देकर, समझ-बूझकर होने के कारण, विशेष फलदायक होगा। जो धनिक होने के कारण विशेष बोझ सहन कर सकते है, उनके त्याग की मात्रा विशेष रूप में होनी चाहिए, पर दूसरों के लिए तो अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार ही वह हो सकती है।

संपत्ति-दान में फिलहाल साधारण तौर पर आमदनी के या गृहस्थी-खर्च के छठे हिस्से की माँग की जा रही है। लेकिन यह कोई

टैक्स नही है। दाता अपनी शक्ति के अनुसार कम-बेशी हिस्से का सकल्प कर सकता है। हमारे अर्थशास्त्री अभी भारत में फी व्यक्ति पीछे मासिक वीस रुपये आमदनी आँकते है। यह आँकडा औसत का है। अर्थात् कुछ की आमदनी इससे भी बहुत कम है और कुछ की बहुत ज्यादा। परिवार की औसत-सख्या पाँच व्यक्ति मानकर, एक परिवार की आमदनी मासिक रुपये सौ गिन ले और सपत्ति-दान में प्रति रुपये पीछे आधा आने का सकल्प किया जाय, तो गरीब-परिवार को उस दान के लिए महीने भर में तीन रुपये दो आने ही खर्च करने होगे। ऊपर लिखे मुताबिक यज्ञ के महत्त्व का ख्याल करते हुए क्या गरीव के लिए इतनी-सी रकम कोई वडा बोझ हो सकती है ? हम देखते है कि आजकल गरीब लोग भी कुछ-न-कुछ फिजूल खर्च करते ही रहते है। होटल, चाय, तवाकू, सिनेमा आदि में उनका कितना ही पैसा वरवाद होता रहता है। ऐसे खर्चो में से थोडी किफायत की जाय, तो वे सपत्तिदान के लिए थोडी-सी रकम आसानी से वचा सकते है और उनके व्यसन भी कुछ अश में घट सकते है। समाज की विचार-धारा में परिवर्तन करने के खातिर उनको इतना-सा त्याग करने के लिए जरूर तैयार होना चाहिए। अगर उनको ठीक तरह समझाया जाय और उनको जँच जावे, तो यह काम आसान है। इतनी वडी तादाद-वाले गरीब लोग यज्ञ का सिद्धात यदि अपना लेवे, तो फिर सारे समाज का धन-सपत्ति सवधी विचार वदलने मे शका नही रह सकती। गरीब को चाहिए कि वह उत्साह और हर्ष के साथ इन यज्ञो में शरीक हो।

विद्यार्थी भी शरीक हो

हाईस्कूलो और कॉलेजो के विद्यार्थियो से भी अपेक्षा है कि वे सपत्तिदान-यज्ञ मे योग दे। उनको इन यज्ञो का प्रचार-कार्य और

श्रमदान तो करना ही चाहिए, साथ-ही-साथ यज्ञ के निमित्त से समाज के लिए अपनी ओर से कुछ खर्च भी करते रहना चाहिए। शायद वे कहें कि हम कोई कमाई तो करते नही है, केवल खर्च ही खर्च करते है। फिर भी उनसे अपेक्षा है कि वे अपने विद्यार्थी-काल में भी कुछ-न-कुछ नियमित रूप से त्याग करने की आदत बना लें। अगर वे यह समझते हों कि समाज-सेवा का काम विद्या हासिल करने के बाद गृहस्थ-जीवन मे शुरू हो, तो उनका यह समझना गलत होगा। अनुभव तो यह है कि जिन्होंने विद्यार्थी-जीवन मे समाज-सेवा का काम किया है, आगे चलकर उनमे से ही कुछ समाज-सेवा का काम चालू रखते रहे है। शिक्षा-काल मे विद्यार्थी जनो का उत्तम व ऊँचे दर्जे के विचारो से सपर्क आता है, वे उनसे प्रभावित भी होते है। भविष्य में समाज-सेवा करने के भाव भी उनके दिल में पैदा होते है। जिन भावनाओं की आचरण से दृढता और पुष्टि नही होती, वे भाव आगे टिक नही पाते और प्रपंच मे फँस जाने के बाद तो वे भाव प्रायः मिट भी जाते है। इसलिए विद्यार्थी-जीवन मे ही आचरण से सद्गुणो का पोषण करना चाहिए। यह बात भविष्य पर छोडने लायक नही है।

अब प्रश्न यह रह जाता है कि विद्यार्थी संपत्ति दान-यज्ञ में किस प्रकार योग दे सकते है। उन्हें कोई आमदनी तो है नही, फिर भी खर्च तो उन्हें करना ही पडता है। उसी खर्च के अनुपात में वे संपत्ति-दान का सकल्प कर सकते है। स्कूल-कॉलेजो के खर्च काफी बढ गये है, फिर भी जीवन में सादगी लायी जाय, तो काफी किफायत हो सकती है। इसलिए विद्यार्थी को अपने अध्ययन-काल में जो कुछ खर्च करना पडता है, उसका एक छोटा-सा हिस्सा, जैसे कि रुपये पर दो पैसे सपत्तिदान-यज्ञ मे खर्च करने का सकल्प वे कर सकते है। अब भी कही-कही विद्यार्थी अकाल, बाढ आदि संकटो के समय कुछ-न-कुछ

सहायता, किसी-न-किसी रूप में देते है, दूसरे गरीब विद्यार्थियो की मदद भी करते है। पर यह काम कभी-कभी और नैमित्तिक रूप से होता है। हम चाहेगे कि खर्च का एक हिस्सा नियमित रूप से और जीवन के एक अग के रूप में सपत्तिदान-यज्ञ में खर्च करने का सकल्प हो, जो वाद में काम-धधे में लगने पर आमदनी के यथोचित हिस्से में परिणत हो जाय।

यज्ञों का उद्देश्य : अहिंसक समाज

भूदान-यज्ञ के वाद सपत्तिदान-यज्ञ शुरू हुआ। श्रमदान-यज्ञ की आवाज भी गूंज रही है। बुद्धिदान-यज्ञ का भी नाम कभी-कभी सुनायी देता है। अव जीवनदान-यज्ञ भी चल पड़ा है। क्या ये सव चीजें भिन्न-भिन्न है ? जीवनदान-यज्ञ की वात कुछ अलग है, पर वाकी सव यज्ञ एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न पहलू है। उनमे से किसी एक से या सव मिलाकर भी कोई एक अतिम वस्तु सिद्ध नही होती। वे साधन मात्र है। साध्य वस्तु क्या है ? भूतकाल में मानव-समाज में सुख-शाति स्थापित करने के लिए अनेक प्रयत्न हुए। उनसे समय-समय पर कुछ हद तक लाभ भी हुआ। तथापि सतोप होने लायक दशा प्राप्त नही हुई। इसके लिए अव भी प्रयत्न जारी है और भविष्य में भी जारी रहेगा। कई देशो में हिंसा के आधार पर नये समाज की रचना का प्रयत्न हुआ और हो रहा है। कुछ देशो ने कानून का सहारा उपयुक्त समझा। वास्तव में समाज कैसा हो, इसके कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट चित्र विचारको के सामने है। कुछ लोग ऐसा समाज चाहते है कि जिसमें किसी का शोपण न हो और शासन कम-से-कम हो, उसमें व्यक्ति यथासंभव स्वतत्र और स्वावलवी रहकर अपना विकास कर सके और श्रमनिष्ठ हो। आर्थिक और सामाजिक विपमता हटे।

स्वार्थ की जगह परार्थ और स्पर्धा की जगह सहयोग चले एवं संयुक्त परिवार में जैसे एक-दूसरे का भाई-चारा चलता है, वैसा ही व्यवहार सारे समाज में चले। ऐसे समाज को हम सर्वोदयी या अहिंसक समाज कह सकते है या रामराज्य भी। पर प्रश्न यह है कि ऐसा समाज कैसे वन सकेगा ? क्या केवल भौतिक परिस्थिति वदलने से यह वात साध्य हो सकगी ? समाज व्यक्तियों का वनता है। अगर व्यक्ति अर्थात् मनुष्य न वदले, तो केवल भौतिक परिवर्तन से क्या शाश्वत सुख-शाति प्राप्त हो सकेगी ? जिसके हाथ में भौतिक चीजे रहेगी, उसके खुद के सुधरे विना उन चीजों का क्या समाज-हित में ठीक उपयोग हो सकेगा ? हिंसा और कानून से केवल भौतिक परिवर्तन हो सकता है, मनुष्य के हृदय का परिवर्तन और चीज है। अहिंसक समाज की रचना के लिए मनुष्य के हृदय में सही परिवर्तन होना आवश्यक है अर्थात् उसमे मानवता आनी चाहिए। भूदान आदि यज्ञ ऐसे समाज की रचना के और मनुष्य के हृदय-परिवर्तन के प्रयत्न में सही कदम है। और भी अनेक वातें करनी होगी, पर इन यज्ञों के विना नव-समाज-रचना का उद्देश्य सफल होना मुश्किल है।

क्या यह संभव है ?

प्रश्न पूछा जाता है और वह स्वाभाविक है कि क्या ऐसे समाज का हो सकना कभी सभव है ? हजारो वर्षो मे अनेक साधु-संतो ने प्रयास किया, सव धर्मवालो ने भी प्रयत्न किया, परतु सफलता नही मिली। क्या कभी वहुजन समाज इतना सुधर जायगा कि सव अपना-अपना व्यवहार भाईचारे की दृष्टि से करते रहेंगे ? क्या समझाने मात्र मे इतना शुभ-परिवर्तन हो सकेगा ? क्या संपत्तिदान-यज्ञ में वहुत वडी तादाद मे लोग ईमानदारी से साथ देंगे ? रचनात्मक कार्यकर्ताओ के

दिल मे भी ऐसी ही शकाओ का उठना सभव है। अगर दिल में शका रखकर काम करते रहेंगे, तो इस महान् कार्य के योग्य पर्याप्त उत्साह हम अपने में नही पायेंगे। इसलिए इस प्रश्न का विचार कर लेना उचित होगा। हम अच्छी तरह जानते है कि यह काम आसान नही है। परतु सबसे पहला विचार तो हमें यह करना चाहिए कि जिस महान् उद्देश्य को लेकर ये यज्ञ चलाए जा रहे है, वह सिद्ध करने के योग्य है या नही। अगर है तो उसके लिए जी-जान से जुट जाने में ही पुरुषार्थ है। काम जितना कठिन है, उतना ही उसके लिए अधिक प्रयास करना होगा। उसे छोड देना मनुष्य के लिए शोभास्पद नही है। दूसरी बात यह है कि सर्वोदय का स्वप्न कभी साकार न हो, तो भी ये यज्ञ अपने आप में ही बहुत कल्याणकारी है। इसलिए इन्हे सफल करने में कोई कसर नही रहनी चाहिए।

असंभव नही है

साधु-सतो का प्रयास व्यर्थ नही गया। उनका मानव-समाज पर बडा ऋण है। अगर वे सदाचार की शिक्षा न देते, तो हमारी क्या दशा होती ? उन्होने हमें एक मजिल तक पहुँचाया है, जहाँ से उनकी सीख दीप-स्तभ की तरह हमें चेतावनी देती हुई आगे का मार्ग बताती है। उन्ही की बातें हमें आज की भाषा मे समझनी होगी। उन्होने हमें आध्यात्मिक दृष्टि से समझाया, जो मनुष्य के सुधरने का और नैतिक बनने का मूलभूत आधार है। परतु अब समाज इतना पेचीदा बन गया है कि हमें व्यावहारिक दृष्टि का भी ध्यान रखना होगा। ईशावास्यमिद सर्वम् की बात सही है। कुछ सप्रदायो में यह संकल्प भी कराया जाता है कि मेरा जो कुछ है वह ईश्वर को अर्पण है। पर प्रश्न यह है कि जगत् में ईश्वर का प्रतिनिधि कौन है ? मै अपने को

ही ईश्वर का प्रतिनिधि क्यो न मानूं और मनमाने ढग से संपत्ति आदि का उपयोग करूँ, तो मुझे कोई मना क्यो करे ? वस्तुत. ईश्वर का सच्चा प्रतिनिधित्व समाज की ओर आना चाहिए। हमे समझना चाहिए कि हमारे पास जो कुछ है, वह समाज की कृपा का फल है, इसलिए उसका लाभ समाज को मिलना चाहिए। यह केवल कल्पना की वात नही है, वस्तुस्थिति है। इस पुस्तिका मे यही तत्त्व समझाने की कोशिश की गयी है। साधु-सतो ने सवके प्रति समभाव रखने को कहा, परंतु साथ ही यह भी कहा कि व्यक्ति को जो दुख भोगना पडता है, वह उसकी किस्मत का खेल है। वास्तव मे वहुत-सी विपमता या कप्ट मनुष्य निर्मित सामाजिक व्यवस्था के कारण है। अव यह मानने का समय आ गया है कि मनुष्य के प्रयत्न से उसमे परिवर्तन हो सकता है, ताकि सुख हो तो सव वाँट ले और दुख हो तो सव सहन करे। यह न्याय नही है कि कुछ लोग सुख-चैन मे रहे और करोड़ो कष्ट मे।

फिर भी मनुष्य की स्वार्थवृत्ति इतनी प्रवल है कि अगर उसका सुधरना केवल व्यक्ति के अधीन हो तो हम वुराई के मिटने की आशा कम ही रख सकते है। मनुष्य की मानवता पर हमे भरोसा रखना चाहिए। पर प्रश्न अधिकाश समाज के यथासंभव जल्दी सुधरने का है। इस दृष्टि से यह वात ध्यान मे रखने लायक है कि मनुष्य जो सुधरता है, वह कुछ अपने विवेक से, कुछ समाज की विचारधारा के दवाव से। जरायम पेशा जातियों मे चोरी करना दोप नही माना जाता, वाकी सारे समाज मे वह दोप माना जाता है। यह परिणाम उस समाज की विचारधारा का है, जिसमें हम रहते है। अगर पहले लिखे मुताविक सम्पत्ति और विद्या-वल के वारे में समाज मे विचारधारा वदल जाय, तो उनका उपयोग समाज-हित मे होना वहुत कुछ सभव है। साम्यवाद के आधे जगत् ने यह विचार मान लिया है। पूंजीवाद के

जगत् ने भी यह मान लिया है कि राज्य को कल्याणकारी होना चाहिए, जिसमें हर एक को सर्वसाधारण आवश्यक चीजें मिल ही जानी चाहिए, ताकि कोई भी कष्ट मे न रहे। जगत मे जो हवा चल रही है, उससे भारत अछूता कैसे रह सकता है ? और चूंकि भारत में नब्बे प्रतिशत लोग दरिद्रावस्था में है, इसलिए इस विचार का दृढमूल होना कठिन नही है। वे गरीब लोग अपने हक की भाषा तो समझ ही सकते है, उन्हे उनके कर्तव्य की भाषा भी समझानी है। यज्ञ में योग देने के लिए उनकी गरीबी के कारण उनको प्रत्यक्ष में आर्थिक त्याग तो थोडा-सा ही करना पडेगा, पर इतना आवश्यक है कि वे त्याग का महत्त्व समझ लें। वे अपनी ओर से थोड़ा-सा भी त्याग किये बगैर केवल श्रीमतो से ही त्याग की अपेक्षा रखेंगे तो काम नही होगा। इसीलिए इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि गरीब भी इन यज्ञो में शरीक हो।

विचार में बडी शक्ति होती है। अगर बहुजन समाज के विचार का प्रवाह सही दिशा से चलता है, तो समाज-परिवर्तन की शका नही रहनी चाहिए। पर यह पूछा जाता है कि इस प्रक्रिया मे कितना समय लगेगा, कहाँ तक धीरज रखें ? क्राति इस प्रकार मदगति से नही हो सकती। क्या हिंसा या कानून से काम जल्दी हो सकता है ? अनुभव तो यही बताता है कि इन दोनो प्रकार की प्रक्रियाओ में काफी समय लगता है। फिर मनुष्य व्यक्तिगत रूप से ज्यो का त्यो भला-बुरा बना रहता है, सो अलग। इस जमाने में विचारो का परिवर्तन भी बडे वेग से हो रहा है। दूर-दूर का सपर्क काफी बढ गया है। जिस बात के लिए पहले सौ वर्ष लगते थे, वह अब दस-पन्द्रह वर्षो में हो सकती है। पुराने जमाने में प्रक्रिया अधिकतर व्यक्तिगत रूप से होती थी, अब सामूहिक रूप से होने लगी है। बहुजन समाज मानने लगा है और

चाहता है कि विषमता न रहे, समानता आये। फिर भी कानून के लिए इनकार तो नहीं है। वह जन-मानस बदलने पर ही कामयाब हो सकता है। इसलिए समझा-बुझाकर और यज्ञों के रूप में आचरण कराकर समाज को बदलने का प्रयत्न हो रहा है। यह समझना गलत है कि हिंसा या कानून के सिवा भौतिक परिस्थिति और मानस बदलवाने का जनता के पास दूसरा कोई उपाय नहीं है। महात्माजी ने प्रयोग करके साबित कर दिया है कि सत्याग्रह हिंसा का स्थान ले सकता है, उससे भौतिक स्थिति बदलने के साथ-साथ मनुष्य का मानस भी बदलता है।

भारत में आज जनतन्त्रात्मक राज्यसत्ता चल रही है। इसका तरीका भी यही है कि विभिन्न दलवाले अपनी-अपनी विचारधारा जनता को समझाकर उसके विचार बदलना चाहते हैं। यह प्रक्रिया भी वास्तव में विचार परिवर्तन की ही है, न कि केवल कानून बनाने की।

ऊपर की बातों पर गहरा विचार करने पर कार्यकर्ताओं को विश्वास हो जाना चाहिए कि महात्माजी और विनोबाजी के बताये हुए रास्ते पर चलने से हम अपना उद्देश्य सिद्ध करने में सफल हो सकेंगे। न्याय की पुकार है—जमाने की मांग है, वह रुक नहीं सकेगी। अहिंसा का मार्ग ही कल्याणकारी है।

व्यक्तिगत मालिकी हक

ऊपर लिखे मुताबिक विचार परिवर्तन में व्यक्तिगत संपत्ति के मालिकी के हक के बारे में आमूल परिवर्तन होना आवश्यक है। सोच-विचार कर देखा जाय, तो धन कमाना तो दूर रहा, समाज के सहयोग और मदद के बिना मनुष्य जिंदा भी नहीं रह सकता। अगर किसी को अपने पुरुषार्थ का घमंड हो तो वह जंगल में अकेला रहकर देखे। मनुष्य

समाज में रहता है, एक-दूसरे की मदद होती है, तब ही वह अपनी आजीविका चला सकता है। गरीब मजदूर को भी मालिक कुछ काम देता है तब उस मजदूर का पेट भरता है और मजदूर की मदद से मालिक का काम वन आता है। व्यापारी को कोई चीज बेचता है और उससे कोई चीजें खरीदता है, तब उसका व्यापार चलता है। कारखाने में भी अनेक तरह के लोग सहयोग देते है, तब कारखाना चलता है। बीमारो के कारण डाक्टरो का काम चलता है और सपत्ति के झगडो के कारण वकीलो का। इसी प्रकार सब धधे परस्पर के सहयोग से चलते है, जिनसे मनुष्य की उपजीविका सधती है। जब मेरा शरीर-बल, वुद्धि-वल और सपत्ति-बल समाज पर ही निर्भर है तो इन पर केवल व्यक्तिगत मालिकी या अधिकार समझना न्यायसगत कैसे हो सकता है?

अगर हमारा स्वार्थ हमें दूसरी ओर न खीचे तो इस निर्णय पर आना आसान होगा कि निज के लिए आवश्यकता से अधिक धन कमाना और अधिक सपत्ति पर व्यक्तिगत मालिकी हक समझना उचित नही है। मालिकी हक का समाज के हित में विसर्जन हो यानी उसका उपयोग और अपनी वुद्धि का भी उपयोग समाज को मिले यह माँग न्याय्य है और कानून में या समाज की मान्यता में जो व्यक्तिगत मालिकी हक की विचारधारा चल रही ह उसमें परिवर्तन होना जरूरी है, अर्थात् इस धारणा पर आना होगा कि सपत्ति व्यक्ति की न रहकर, समाज-हित के लिए हो।

कुछ गैर-समझ

जव धनिक लोगो से सपत्तिदान-यज्ञ के वारे मे चर्चा की जाती है, तब कही-कही उनकी ओर से कहा जाता है कि वे सरकार को भारी टैक्स देते है, जिसका उपयोग आखिर जनता के हित में ही होता है।

उसे एक प्रकार से हमारा संपत्तिदान क्यो न समझा जाय ? इसी प्रकार कभी-कभी यह भी बहस होती है कि संपत्ति-दान-यज्ञ सरकार की आर्थिक-वसूली का प्रतिद्वंद्वी है। सरकार कर-वसूली से धनिको की आमदनी काटती है, वैसे ही संपत्ति-दान भी उनकी आमदनी काटता है; दोनो प्रक्रियाओ का आपस मे द्वंद्व है। इसलिए सपत्तिदान-यज्ञ चलाना उचित नही है। वास्तव में ये दोनो दलीले यज्ञ का सही अर्थ न समझने का परिणाम है। सरकार के पास जो कुछ पैसा जाता है, वह खुशी से नही, जवरदस्ती से जाता है। देनेवाले वच निकलना चाहते है। आर्थिक व्यवस्था मे शुद्धता आने की जगह अशुद्धता वढती है। उक्त दलील मे यही मान लिया गया दीखता है कि भूदान और संपत्ति-दान-यज्ञ केवल भौतिक चीजें, हस्तांतरित करने के लिए है। वास्तव में उद्देश्य तो अलग ही है, जिसका विवेचन ऊपर किया गया है।

: ४ :

संपत्ति-दान की मात्रा और उद्देश्य

परिवार के व्यक्तियो की औसत सख्या पाँच मानकर दरिद्रनारायण के रूप में बाहर के एक व्यक्ति को अपने हृदय में स्थान मिले, इस आशय से यह सूचना है कि फिलहाल सपत्ति-दान में आय का छठा हिस्सा दिया जाय। यह हिस्सा केवल एक साल या एक ही बार नही, जीवन भर देने की बात है। क्योंकि अगर सपत्ति हम जीवन भर अपने पास रखते है, या जीवन भर कमाई करते है तो वह पहले बताये मुताबिक समाज की देन होने के कारण, समाज का उस पर सदा हक पहुँचता है।

मोटे तौर पर जीवन भर सपत्तिदान देते रहना भारी लगना सभव है, परतु यह प्रक्रिया अत करण-शुद्धि की है, वह हमारे जीवन में सयम लाने में मदद करेगी, उसमें स्वय प्रेरणा से स्वय पर नियत्रण आता है। इसके न होने से समाज में क्या चल रहा है? जिनके पास करोड की सपत्ति है वे दो करोड बनाने में जी-जान से लग रहे है। साधन की शुद्धता का शायद ही ख्याल रहता है। इतना धन कमाने की जरूरत क्या है, इस धन का क्या करेंगे, इसमें खुद का कल्याण है या नही, इसका विचार कितने लोग करते है? धनिको को अपने काम-काज में व्यस्त रहने के कारण देश-सेवा के लिए फुरसत नही, गरीबो को पेट भरने की चिता के कारण अवकाश नही, मध्यम वर्ग बढी हुई महँगाई के कारण ग्रस्त है। देश-सेवा के काम के लिए कुछ अपवाद रूप थोडे से ही मिलते है। इस दशा में हमारी प्रगति कैसे हो? वास्तव में सबसे अधिक सुविधा उन धनिको को है, जिनके परिवार मे काफी लोग है,

जिनमें से कुछ काम-काज सँभालने लायक है। उन्हे अपनी धार्मिक परपरा के अनुरूप समयानुकूल वानप्रस्थाश्रम स्वीकार कर गरीबों की सेवा मे लग जाना चाहिए। परन्तु संसार की तथा धन की लालसा इतनी तीव्र है कि मरने तक इन वन्धनो से छूटने का हम विचार तक नही करते।

संपत्ति-दान की सामयिकता

संपत्तिदान की रकम किसी दूसरे के सुपुर्द नही करनी है; खुद ही खर्च कर उसका हिसाव भेज देना है। इस खर्च के विनोवाजी ने तीन उद्देश्य वताये हैं —

(१) भूदान-यज्ञ के सिलसिले मे जिन भूमिहीनो को जमीन दी जायगी उनके लिए साधन-सामग्री;

(२) जो गरीव कार्यकर्ता इन यज्ञो में या ग्राम-सेवा में लगेंगे, उनका निर्वाह;

(३) सत्साहित्य का प्रचार।

इस योजना मे दाता पर पूरा विश्वास रखा गया है। ट्रस्टीशिप की विचारधारा अमल मे लाने मे यह एक कारगर कदम सावित होगा।

धनिक लोग कुछ-न-कुछ दान तो करते ही रहते है, कुछ शायद अपनी आय के छठे हिस्से से भी अधिक करते होगे। पर यह दान खुद की प्रेरणा से न होकर प्राय. पर-प्रेरित होता है। कुछ विशिष्ट लोग माँगने को आते है, तो इन्कार नही कर सकते, जिस काम के लिए दान दिया जाता है वह चाहे उन्हे पसन्द न भी हो। ऐसा दान, लेनेवाले और देनेवाले, दोनों के लिए अप्रिय रहता है। इसके वदले अगर ऐसा नियम वना लिया जाय कि हर साल आय का अमुक हिस्सा दान

: ४ :

संपत्ति-दान की मात्रा और उद्देश्य

परिवार के व्यक्तियो की औसत सख्या पाँच मानकर दरिद्रनारायण के रूप में बाहर के एक व्यक्ति को अपने हृदय में स्थान मिले, इस आशय से यह सूचना है कि फिलहाल सपत्ति-दान में आय का छठा हिस्सा दिया जाय। यह हिस्सा केवल एक साल या एक ही बार नही, जीवन भर देने की बात है। क्योकि अगर सपत्ति हम जीवन भर अपने पास रखते है, या जीवन भर कमाई करते है तो वह पहले बताये मुताबिक समाज की देन होने के कारण, समाज का उस पर सदा हक पहुँचता है।

मोटे तौर पर जीवन भर सपत्तिदान देते रहना भारी लगना सभव है, परतु यह प्रक्रिया अत करण-शुद्धि की है, वह हमारे जीवन में सयम लाने में मदद करेगी, उसमें स्वय प्रेरणा से स्वय पर नियत्रण आता है। इसके न होने से समाज में क्या चल रहा है? जिनके पास करोड की सपत्ति है वे दो करोड बनाने में जी-जान से लग रहे है। साधन की शुद्धता का शायद ही ख्याल रहता है। इतना धन कमाने की जरूरत क्या है, इस धन का क्या करेंगे, इसमें खुद का कल्याण है या नही, इसका विचार कितने लोग करते है? धनिको को अपने काम-काज में व्यस्त रहने के कारण देश-सेवा के लिए फुरसत नही, गरीबो को पेट भरने की चिंता के कारण अवकाश नही, मध्यम वर्ग बढी हुई महँगाई के कारण त्रस्त है। देश-सेवा के काम के लिए कुछ अपवाद रूप थोडे से ही मिलते है। इस दशा में हमारी प्रगति कैसे हो? वास्तव में सबसे अधिक सुविधा उन धनिको को है, जिनके परिवार में काफी लोग है,

जिनमे से कुछ काम-काज सँभालने लायक है। उन्हे अपनी धार्मिक परंपरा के अनुरूप समयानुकूल वानप्रस्थाश्रम स्वीकार कर गरीबों की सेवा मे लग जाना चाहिए। परन्तु संसार की तथा धन की लालसा इतनी तीव्र है कि मरने तक इन बन्धनो से छूटने का हम विचार तक नहीं करते।

संपत्ति-दान की सामयिकता

संपत्तिदान की रकम किसी दूसरे के सुपुर्द नही करनी है, खुद ही खर्च कर उसका हिसाब भेज देना है। इस खर्च के विनोबाजी ने तीन उद्देश्य बताये है —

(१) भूदान-यज्ञ के सिलसिले में जिन भूमिहीनो को जमीन दी जायगी उनके लिए साधन-सामग्री;

(२) जो गरीब कार्यकर्ता इन यज्ञों मे या ग्राम-सेवा मे लगेगे, उनका निर्वाह;

(३) सत्साहित्य का प्रचार।

इस योजना में दाता पर पूरा विश्वास रखा गया है। ट्रस्टीशिप की विचारधारा अमल में लाने मे यह एक कारगर कदम साबित होगा।

धनिक लोग कुछ-न-कुछ दान तो करते ही रहते है, कुछ शायद अपनी आय के छठे हिस्से से भी अधिक करते होगे। पर यह दान खुद की प्रेरणा से न होकर प्राय. पर-प्रेरित होता है। कुछ विशिष्ट लोग मांगने को आते है, तो इन्कार नही कर सकते, जिस काम के लिए दान दिया जाता है वह चाहे उन्हे पसन्द न भी हो। ऐसा दान, लेनेवाले और देनेवाले, दोनो के लिए अप्रिय रहता है। इसके बदले अगर ऐसा नियम बना लिया जाय कि हर साल आय का अमुक हिस्सा दान

किया जायेगा, तो दाता खुद सोचेगा कि कौन-कौन से काम उसके दान के लायक है। जो काम उसे प्रिय होगा, उसके लिए खुद सोच-समझकर वह अपने दान की रकम खर्च करेगा और अपने प्रिय उद्देश्य को सफल होते देखेगा। कुछ व्यापारियो में यह परम्परा रही है कि वे अपनी आमदनी का एक निश्चित हिस्सा दान-धर्म के लिए हर साल अलग रखते रहे। कुछ जैन भाई अमुक मात्रा से अधिक सपत्ति सग्रह न करने का व्रत भी लेते है। ऐसी पद्धति को सम्पत्ति-दान-यज्ञ व्यापक बनाना चाहता है। पर यह ध्यान मे रखना चाहिए कि पुरानी पद्धति मे सपत्ति पर अपना हक मानकर दया के रूप में दूसरे को मदद करने की बात थी। सपत्ति-दान-यज्ञ में, इससे उल्टे सपत्ति की निजी मालिकी न मानकर समाज की मानकर उसे खर्च करना है। पुरानी पद्धति में एक वडा दोष यह आ गया है कि वह समयानुकूल नही रही है। सात्त्विक दान तो वही समझा जा सकता है कि जो 'देशे काले च पात्रे च' हो। विनोवाजी ने सम्पत्ति-दान के जो उद्देश्य बताये है, वे देश की वर्तमान परिस्थिति मे बहुत उपयुक्त है। अभी धनिको द्वारा जो दान होता रहता है उमका लाभ प्राय शहरी मध्यम वर्ग के लोगो को ही मिलता है। वास्तव मे दान गरीब-से-गरीव के पास पहुँचना चाहिए। विशेषकर देहात के लोगो को, जिनकी सख्या भारत में ८०% है। यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि जिसको दान दिया जाता है, वह पगु न वने, वल्कि काम में लगकर स्थायी रूप से अपनी आजीविका अपने श्रम से सम्मानपूर्वक चला सके। भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति-दान-यज्ञ से यह वात विशेप रूप मे सधती है।

•

परिशिष्ट

संपत्ति-दान-यज्ञ के बारे में जानकारी

१९५४ के अप्रैल महीने में बोधगया के सर्वोदय-समाज के सम्मेलन के समय संपत्तिदान-यज्ञ की तफसील के बारे मे कुछ सोचा गया था और उसका एक पत्रक प्रकाशित भी किया गया था। उसके बाद मार्च '५५ के पुरी-सम्मेलन के समय भी उस विषय में कुछ अधिक चर्चा और विचार हुआ। अब तक ऐसा जो कुछ विचार हुआ है, उसकी मुख्य बाते नीचे मुताबिक हैं :—

सिद्धान्त

भूमिदान-यज्ञ के पीछे जो सिद्धान्त है, वही संपत्तिदान-यज्ञ में भी है। अर्थात् ऐसे जमीन किसी की व्यक्तिगत मालिकी की न होकर समाज की होनी चाहिए। वैसे ही संपत्ति पर भी किसी व्यक्ति का एकाधिकार न रहकर यह मानना चाहिए कि वह समाज की मालिकी की और समाज के हित के लिए है। समाज के हित मे व्यक्ति का हित भी शामिल है। अर्थात् व्यक्ति सादगीमय जीवन को दृष्टि में रखकर अपने निर्वाह जितना ही उसका उपयोग कर सकता है। मतलब यह है कि मनुष्य के पास जो कुछ शरीर का, विद्या का या धन-संपत्ति का बल है, वह उसने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष समाज से पाया है। इसलिए उसका उपयोग समाज के हित के लिए होना चाहिए, जिसमें अपने निर्वाह का होनेवाला उपयोग भी शामिल है। यह हुई संपत्तिदान के उपयोग की बात। जहाँ तक संपत्ति प्राप्त करने का सवाल है, उसका जरिया शरीरश्रम होना चाहिए, ताकि शोषण और विषमता की गुंजाइश न रहे। संपत्ति-उपार्जन का साधन भी शुद्ध रहना चाहिए।

संपत्तिदान का स्वरूप

ऊपर लिखा विचार प्रस्थापित कर अमल में लाने की दृष्टि से पहले कदम के तौर पर सपत्तिदान का स्वरूप अभी यह रखा गया है कि दाता अपनी आमदनी का या किसी कारणवश यह सभव न हो तो अपने गृहस्थी-व्यय का एक हिस्सा समाज के लिए अर्पण करता रहे। वह हिस्सा व्यक्ति के आमदनी के परिमाण पर अवलबित रहे और वह उत्तरोत्तर बढता जावे। दरिद्रनारायण को अपने परिवार का एक सदस्य मानकर फिलहाल आमदनी का छठा हिस्सा और व्यय का हो, तो पाँचवाँ हिस्सा एक सामान्य परिमाण माना जाय। गृहस्थी-खर्च मे खान-पान, निवास आदि के अलावा बालको की शिक्षा, विवाह आद प्रसगो के खर्च भी शामिल समझने चाहिए। आमदनी से मतलब इन्कम-टैक्स आदि अनिवार्य खर्च बाद करके तमाम जरियो से होनेवाली आमदनी समझना चाहिए। छठा हिस्सा माँगा जाता है, पर यह कोई टैक्स नही है। इसलिए दाता अपनी इच्छा के अनुसार कम-ज्यादा हिस्सा भी दे सकता है, तथापि जिनकी आमदनी बहुत है, उन्हें अधिक फर्क नही करना चाहिए। जिनकी आमदनी बिल्कुल निर्वाह जितनी ही है या उससे भी कम है, उन्हे भी सपत्तिदान-यज्ञ में जरूर शामिल होना चाहिए। पर उनका हिस्सा प्रतीक के तौर पर ही रह सकता है। अभी सपत्तिदान मे हिस्से की बात रखी गयी है, पर लक्ष्य तो यह है कि अपनी सारी सपत्ति समाज की है, ऐसा समझकर व्यक्ति समाज की ओर से उसके ट्रस्टी के तौर पर व्यवहार करने को तैयार हो।

किसान अपना सपत्तिदान अनाज के रूप में दे सकता है।

संपत्तिदान का खर्च

सपत्तिदान की रकम किसी दूसरे को नही देनी है। दाता खुद

खर्च करें। केवल हर साल एक बार उसका हिसाब सर्व-सेवा-सघ को भेज देना चाहिए। संपत्तिदान की रकम खर्च करने के उद्देश्य पू० विनोवाजी ने ये बताये हैं :—

(क) जिन भूमिहीनो को जमीन दी जायगी, उनको बीज, बैल, कुआँ आदि के रूप में साधन-सामग्री मुहैया करना तथा भूदान-यज्ञ मे प्राप्त हुई जमीन के तैयार करने में मदद करना।

(ख) भूदान-मूलक ग्राम-सेवक-वर्ग को अल्पतम निर्वाह-व्यय देना।

(ग) सर्वोदय-साहित्य का प्रचार करना।

इनके अलावा विनोवाजी अथवा सर्व-सेवा-सघ दूसरे उद्देश्य बढा सकेंगे। इन उद्देश्यो मे से किस पर कितना खर्च करना, यह दाता की इच्छा पर अवलम्बित रहे। कई सज्जनो का कहना है कि इन उद्देश्यो के अलावा और भी अनेक सार्वजनिक समाज-हित के लिए उन्हे कुछ-न-कुछ खर्च करना ही पडता है। इसलिए यह व्यवस्था सोची गयी है कि दाता चाहे तो संपत्तिदान की रकम में से एक-तिहाई ($\frac{1}{3}$) तक का हिस्सा अपनी इच्छा के अनुसार दूसरे समाज-हित के कामो में खर्च कर सके और कम-से-कम दो-तिहाई ($\frac{2}{3}$) हिस्सा सपत्तिदान के ऊपर लिखे उद्देश्यो के अनुसार खर्च करे।

चन्दे को प्रोत्साहन नहीं देना है

अक्सर यह पाया जाता है कि दाता लोग भूदान-यज्ञ के काम में आर्थिक सहायता करने के इच्छुक तो है, परंतु वे संपत्तिदान-यज्ञ के रूप मे सकल्प करने को तैयार नही होते। बिना सपत्तिदान-यज्ञ के सकल्प के केवल आर्थिक सहायता करने को एक प्रकार से चंदा ही कहना

चाहिए। ऐसे चदे को प्रोत्साहन नही देना है। हमें जो कुछ प्रयत्न करना है, वह सपत्तिदान-यज्ञ के रूप में ही करना है।

भूमिहीनों को साधन

भूदान-वितरण में जिन्हे जमीन मिली हो, ऐसे भूमिहीनो को साधन देने में सपत्तिदान का उपयोग करना चाहनेवाला दाता यथासभव खुद ही बैलजोडी, हल, औजार, बीज, कुआँ आदि की मदद उन भूमिहीनो को पहुंचावे, न कि पैसे के रूप में। अगर खुद के लिए यह सभव न हो तो प्रातीय भूदान-समितियो से इस बारे में मार्गदर्शन और सहयोग लिया जा सकता है।

कार्यकर्ताओं को निर्वाह-व्यय

सेवक-वर्ग को निर्वाह-व्यय देने में सपत्तिदान का उपयोग करना हो, तो उसका अच्छा रास्ता यह होगा कि दाता वह रकम सर्व-सेवा-सघ की मार्फत खर्च करे। भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में इसकी व्यवस्था किस प्रकार हो, यह सर्व-सेवा-सघ तय करे।

सर्वोदय साहित्य-प्रचार

साहित्य के प्रचार के वारे में साहित्य मुफ्त वाँटने की पद्धति न रहे, पर वह कम कीमत में वेचा जा सकता है। किसी वर्ग-विशेष, विद्यार्थी या कार्यकर्ता आदि को अधिक रिआयत दी जा सकती है। सार्वजनिक पुस्तकालयो, वाचनालयो को मुफ्त भी दिया जा सकता है। सर्वोदय-साहित्य में किन पुस्तको का समावेश हो, उसका निर्देश पू० विनोवा-जी से मिले। इस प्रकार के साहित्य की एक सूची वन जानी चाहिए। [फिलहाल इसमें सर्व-सेवा-सघ द्वारा प्रकाशित साहित्य ही माना जाय।]

संपत्तिदान-यज्ञ के बारे में जो कुछ उद्देश्य ऊपर लिखे गये है उनमें से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्या करना चाहिए, यह दाता जानना चाहे तो प्रांतीय भूदान-समितियाँ उनका मार्ग-दर्शन करे और उद्देश्य सफल करने मे सहयोग भी दे।

संपत्तिदान के कुछ विशेष उपयोग

(१) यदि कोई सवर्ण किसी हरिजन बालक को अपने घर में अपने परिवार का मानकर रखे और उसकी पूरी जिम्मेवारी उठाये, तो उस हद तक वह खर्च संपत्तिदान माना जाय।

(२) जहाँ संस्थाओं में कार्यकर्ता या शिक्षक एकत्र रहते है और उनके वेतन आदि में निश्चित ग्रेडो के हिसाब से एक-दूसरे मे काफी अंतर रहता है, वहाँ अगर वे सब अपनी आय एक जगह इकट्ठी कर ले और फिर प्रत्येक परिवार की सदस्य-संख्या के हिसाब से बाँट ले तो यह संपत्तिदान का उत्तम स्वरूप होगा। फिर संपत्तिदान मे सम्मिलित कोष मे से, भले ही वे केवल प्रतीक के रूप मे थोड़ा-सा ही दें।

(३) गरीबों के संपत्तिदान की रकम थोडी-सी ही होगी। उसका ऊपर लिखे उद्देश्यों के अनुसार दाता को खुद खर्च करना मुश्किल हो सकता है। इसलिए जहाँ ऐसी दान की रकम वार्षिक रुपये २५) तक होती है, वहाँ नीचे लिखी व्यवस्था सोची गयी है।

क—जो खादीधारी नही है, उनके द्वारा प्रमाणित खादी खरीदी जाने पर वार्षिक रकम रुपये ५०) तक की मर्यादा मे खरीद-मूल्य का आधा संपत्तिदान मान लिया जाय।

ख—ग्रामोद्योगी तेल, चावल, शक्कर, जूते, चप्पल और गाय के घी की खरीद-कीमत का चौथाई संपत्तिदान माना जाय।

ग—हाथ-पिसे आटे के इस्तेमाल में अगर पिसाई मजदूरी से की हो, तो एक आना सेर तक की पूरी मजदूरी सपत्तिदान में गिनी जाय।

उपरोक्त व्यवस्था इस दृष्टि से रखी गयी है कि खादी-ग्रामोद्योग हमारी नयी समाज-रचना के आवश्यक अग है। उनका व्यापक प्रचार हो और खादी के तथा ग्रामोद्योगी वस्तुओ के लिए उत्तरोत्तर बढता हुआ बाजार प्राप्त हो।

घ—हिंदी छोडकर अन्य भाषाओ में निकलनेवाला सर्वोदय या भूदान-पत्रिकाओ में से किसी एक का चदा ग्राहक का सपत्ति-दान माना जाय।

ङ—'सर्वोदय स्वाध्याय योजना' के जो सदस्य बनते है, वे रुपये १०) मूल्य में से रुपये ५) सपत्तिदान में गिन सकते है।

(४) जिनकी सपत्ति-दान की रकम वार्षिक रुपये १२) तक हो, वे उस रकम का उपयोग अपनी इच्छा के मुताबिक अकेले या उतना-सा ही दान देनेवाले दूसरे व्यक्तियो के साथ मिलकर किसी भी सार्वजनिक काम के लिए कर सकेंगे।

विविध

चर्चा में यह भी सवाल सामने आया था कि कई जगह व्यापारी लोग लेन-देन में लोगो से लाग के तौर पर अनिवार्य रीति से धर्मादा की रकम वसूल करते है, जिसके उपयोग का कोई खास निश्चित उद्देश्य नही होता। क्या कोई व्यापारी अपने पास जमा हुई धर्मादा की रकम में से सपत्ति-दान दे सकता है ? राय यह रही कि ऐसी रकम में से सपत्ति-दान नही दिया जाना चाहिए।

एक यह प्रश्न भी उठा था कि अगर किसी व्यक्ति के पास काफी

जमीन है, पर भूदान-यज्ञ मे जमीन न देकर केवल संपत्ति-दान देना चाहे, तो वह लिया जाय या नही ? राय यह रही कि वह न लिया जाय।

कार्यकर्ताओं को हिदायतें

१—भूदान-आंदोलन में काम करनेवाले हर कार्यकर्ता को संपत्ति-दान में शरीक होना चाहिए तथा यदि उसके पास जमीन हो, तो भूदान भी करना चाहिए।

२—जहाँ कही हम भूदान की माँग करते है या प्राप्त करने की कोशिश करते है, वहाँ संपत्ति-दान की माँग भी उतने ही आग्रह से करें।

३—हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि जिस किसीने भूदान में जमीन दी है, उसको भी संपत्तिदान-यज्ञ में शामिल होना चाहिए।

४—हम अक्सर अमीर और मध्यम स्थिति के लोगो से तो सपत्ति-दान के लिए प्रयत्न करते है, पर हमे गरीबो से भी सपत्तिदान प्राप्त करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। उनके दान की रकम थोडी-सी होगी। परंतु उससे एक व्यापक वातावरण तैयार होगा, इसका असर सब पर पडेगा।

५—ऊपर लिखा गया है कि जिनकी आमदनी बिलकुल निर्वाह जितनी ही या उससे भी कम है, उन्हे भी संपत्तिदान-यज्ञ में शामिल होना चाहिए। पर उनका हिस्सा प्रतीक के तौर पर ही रहेगा। पूछा जाता है कि गरीबो का हिस्सा कितना रहे और अधिक आमदनी में सपत्तिदान का हिस्सा किस परिमाण मे बढना रहे ? इसका कुछ स्पष्टीकरण हो जाना उचित है। इसके अलावा, चूंकि सपत्तिदान का सकल्प लम्बे अरसे के लिए होता है और उसमें आमदनी का घटना-बढना भी बहुत कुछ सभव है, इसलिए संकल्प करते समय जो आमदनी हो, उसमें आगे चलकर घटा-बढी हो, तो उसके हिस्से का

परिमाण क्या रहे, इसका भी कुछ अदाज रहना उचित है, ताकि बार-बार नया दानपत्र न भरकर दाता खुद उस परिमाण के अनुसार अपने हिस्से को घटा-बढा सके। इसलिए यहाँ हिस्से के परिमाण का सकेत किया जा रहा है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यह कोई कानूनी टैक्स का परिमाण नही है। दाता अपनी परिस्थिति के अनुसार कुछ कमी-बेशी भी कर सकेगा। पू० विनोबाजी का तो कहना यही है कि दरिद्रनारायण को अपने घर का एक सदस्य मानकर उतना हिस्सा सपत्तिदान में देना चाहिए। वास्तव में सपत्तिदान की मात्रा वैसी ही होनी चाहिए। परतु जिनकी आमदनी बहुत थोडी है, उनके लिए निर्वाह की अडचन का ख्याल करते हुए कुछ परिमाण का सकेत कर देने की माँग है। इसलिए यहाँ परिमाण सुझाया जा रहा है। पर वह कम-से-कम है, ऐसा ही समझना चाहिए। जिसकी मासिक आमदनी रुपये ५०) तक है, वह प्रति रुपया एक पैसा अर्थात् चौसठवाँ हिस्सा, मासिक पचास रुपये के ऊपर और डेढ सौ तक की आमदनीवाला प्रति रुपया दो पैसा अर्थात् बत्तीसवाँ हिस्सा, डेढ सौ रुपये से ढाई सौ तक की आमदनीवाला प्रति रुपया तीन पैसा अर्थात् बीसवाँ हिस्सा सपत्तिदान में प्रदान करे। इस प्रकार आगे प्रति सौ पर एक-एक पैसा बढाकर फिलहाल पहले कदम ही के तौर पर छठे हिस्से के परिमाण तक पहुँचना चाहिए। जिनकी आमदनी खासी है, उनको तो इससे भी अधिक देना चाहिए।

६—सपत्तिदान और साधनदान, दोनो के लिए एक साथ प्रयत्न करने में कुछ पेचीदा परिस्थिति खडी हो जाती है। हमें साधनदान की अति आवश्यकता है। पर जब व्यक्तिगत रूप से या सामूहिक रूप से आम सभाओ में दोनो बातें एक ही साथ रखी जाती है, तो साधनदान आसान होने के कारण लोग उतना-सा ही स्वीकार कर लेते है और

सपत्ति-दान की वात पीछे पड़ जाती है। संपत्तिदान गहरी चीज है। हमारे आदोलन मे उसका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसके मुकाविले मे साधनदान गौण है। सपत्तिदान मे वाधा पहुँचे, ऐसी वात न करना उचित होगा। इसलिए भूमि-वितरण के समय तो वहाँ के उपस्थित लोगो से साधनदान के वारे मे आग्रहपूर्वक कहा जाय, ताकि जिनको जमीन दी जायगी, उनका एक साल का काम किसी प्रकार निभ जाय, पर अन्य सव मौको पर सपत्तिदान पर ही जोर देना चाहिए।

७—यदि दाता चाहे कि उसके दान के हिस्से या आमदनी का अंदाज गुप्त रहे, तो कार्यकर्ताओ को सावधानी के साथ वैसा करना चाहिए और ातीय दफ्तर मे एक अलग रजिस्टर रहे, जो गुप्त माना जाय और जिसे प्रातीय-समिति के मुख्य अधिकारी ही देख सके।

अनुरोध

प्रार्थना की जाती है कि सवको सपत्तिदान-यज्ञ मे योग देना चाहिए, चाहे वे गरीव हो या धनिक। विशेषकर राज्य-सत्ताधारी व सरकारी अधिकारी, व्यापारी और उद्योगपति तथा वुद्धि-प्रधान पेशो में लगे हुए लोगो से विशेष आशा रखी जाती है। मत्रीगण, धारा-सभाओ के सदस्य, राजनैतिक और सामाजिक नेता आदि पर समाजहित की विशेष जिम्मेवारी है। इसलिए वे इसमे अवश्य योग देवें। खुद इसमे शामिल होकर दूसरो को भी प्रेरणा दे।

संपत्ति-दान-यज्ञ की रूपरेखा

१ आय का अर्थ :—आय से आशय है इन्कमटैक्स जैसे अनिवार्य खर्च बाद होने पर सब जरियो से होनेवाली कुल आमदनी।

२ आय का कितना हिस्सा :—आय का कितना हिस्सा हो, इस बारे में तथा आय घटे-बढे तो उसमें कैसा फर्क किया जाय, इसके बारे मे सकेत नीचे मुताबिक है

जिसकी आमदनी मासिक रुपये ५०) तक है वह प्रति रुपया एक पैसा अर्थात् चौसठवां हिस्सा, मासिक रुपये ५०) के ऊपर और डेढ सौ रुपये तक की आमदनीवाला प्रति रुपया दो पैसा अर्थात् बत्तीसवां हिस्सा, डेढ सौ रुपये से ढाई सौ तक की आमदनीवाला प्रति रुपया तीन पैसा अर्थात् बीसवां हिस्सा सपत्तिदान में प्रदान करे। इस प्रकार आगे प्रति सौ पर एक-एक पैसा बढाकर फिलहाल पहले कदम के तौर पर छठे हिस्से के परिमाण तक पहुंचना चाहिए। जिनकी आमदनी खासी है, उनको तो इससे भी अधिक देना चाहिए।

किसान अपना सपत्तिदान अनाज के रूप में दे सकता है।

३ दान की रकम का उपयोग :—

(क) वार्षिक रुपये २५) क ऊपर

(१) भूदान-यज्ञ में जिन भूमिहीनो को जमीन दी जायगी, उनको साधन-सामग्री मुहैया करना तथा प्राप्त हुई जमीन के तैयार करने में मदद करना। (२) भूदान-मूलक ग्राम-सेवक को अल्पतम निर्वाह-व्यय देना। (३) सर्वोदय-साहित्य का प्रचार। (४) भविष्य

में विनोबाजी अथवा सर्व-सेवा-संघ दूसरे उद्देश्य शामिल करें तो उन पर खर्च करना ।

अगर दाता चाहे तो दान की रकम का एक तिहाई (⅓) हिस्सा वह अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी सार्वजनिक हित के काम में खर्च कर सकता है, पर कम-से-कम दो-तिहाई (⅔) हिस्सा ऊपर लिखे उद्देश्यों मे खर्च होना चाहिए। किस मद में कितना खर्च करे, यह दाता की इच्छा पर अवलंबित है।

(ख) वार्षिक रुपये २५) तक

जिसका संपत्तिदान रुपये २५) वार्षिक तक हो, वह अगर चाहे तो नीचे लिखे मुताबिक अपनी दान की रकम का उपयोग कर सकता है :

(१) जो खादीधारी नही है, उसके द्वारा प्रमाणित खादी खरीदी जाने पर वार्षिक रकम, रुपये ५०) तक की मर्यादा मे खरीद-मूल्य का आधा संपत्तिदान मान लिया जाय।

(२) ग्रामोद्योगी तेल, चावल, शक्कर, जूते, चप्पल और गाय के घी की खरीद-कीमत का चौथाई संपत्तिदान माना जाय।

(३) हाथ-पिसे आटे के इस्तेमाल में अगर पिसाई मजदूरी स की हो तो एक आना सेर तक की पूरी मजदूरी संपत्तिदान में गिनी जाय।

(४) हिंदी छोड़कर अन्य भाषाओं में निकलनेवाली सर्वोदय या भूदान-पत्रिकाओं में से किसी एक का चन्दा ग्राहक का संपत्ति-दान माना जाय।

(५) 'सर्वोदय स्वाध्याय योजना' के जो सदस्य बनते है, वे रुपये १०) मूल्य में से रुपये ५) संपत्ति-दान में गिन सकते है।

(ग) वार्षिक रुपये १२) तक

जिनकी सपत्तिदान की रकम वार्षिक रुपये १२) तक हो, वे रकम का उपयोग अपनी इच्छा के मुताविक अकेले या उतना-सा दान देनेवाले दूसरे व्यक्तियो के साथ मिलकर किसी भी सार्वजा हित के काम के लिए कर सकेगे।

४ मार्गदर्शन और सहयोग :—सपत्तिदान की रकम का यथासभव दाता खुद करे। दाता को अगर खर्च करने आदि के में मार्गदर्शन की आवश्यकता हो, तो प्रातीय भूदान-समिति मार्गदर्शन तथा सहयोग लिया जाय।

परिशिष्ट—ग

संपत्ति-दान-यज्ञ का दानपत्र

पू० विनोवाजी ने भारतीय परपरा के अनुसार आर्थिक क्राति की अहिंसक प्रक्रिया को सपूर्ण रूप देने की दृष्टि से लोगो से भूमि के अलावा अपनी सपत्ति की आय का छठा हिस्सा देते रहने की माँग की है। भूमि न होने के कारण जो लोग भूमिदान-यज्ञ मे हिस्सा नही ले सकते, उनके लिए भी अव इस पवित्र काम मे शामिल होने का रास्ता खुल गया है। दरिद्रनारायण की सेवा के लिए किये गये उनके आवाहन पर मैं सपत्ति-दान-यज्ञ मे शरीक होता हूँ और संपत्तिदान-यज्ञ की योजना के अनुसार उसमे अपना हिस्सा अर्पण कर उसका विनियोग करता रहूँगा तथा उसके खर्च का वार्षिक हिसाव सर्व-सेवा-सघ को भेजता रहूँगा।

अपने इस सकल्प का अतर्यामी रूप मे मैं ही साक्षी हूँ और अपनी अंतरात्मा से वफादार रहूँगा। ईश्वर मुझे वल दे।

मेरी वर्तमान आय का अंदाज रुपये वार्षिक / मासिक

फिलहाल हिस्से का परिमाण आय का हिस्सा......वाँ

तारीख..... ...   ____________________

हस्ताक्षर

पूरा नाम और पता____________________

____

____

____

[सूचना दानपत्र भरकर प्रांतीय भूदान-समिति के दफ्तर में भेज दिया जाय।]

सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना

कार्यकर्ताओं, जिज्ञासुओ और जनता में सर्वोदय-विचार के प्रचार की दृष्टि से 'सर्वोदय-स्वाध्याय-योजना' शुरू की गयी है, जिसके अनुसार लोगो को कम से कम मूल्य में स्वाध्याय योग्य उत्तम नवीनतम साहित्य नियमित रूप से मिलता रहे। योजना की सक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है—

१. **सभासद**—सस्था या व्यक्ति हर कोई सभासद बन सकेगा।

२. **शुल्क**—इसका वार्षिक शुल्क दस रुपये है।

३. **सुविधाऐं**--(अ) वर्ष भर तक भूदान-यज्ञ, गया (हिन्दी) या उसके बदले भूदान सबधी विभिन्न प्रातो से निकलनेवाले साप्ताहिको या पाक्षिको में से एक भाषा का एक पत्र दिया जा सकेगा, जिसका शुल्क प्राय तीन रुपया हो।

(आ) बाकी सात रुपयो में से एक रुपया डाकखर्च का माना है। शेष छह रुपयो में बारह रुपयों का हिन्दी भाषा का साहित्य दिया जायगा, जिसकी पृष्ठ-सख्या लगभग २५०० क्राउन साइज की होगी।

४. **योजना का वर्ष**—योजना का वर्ष १ जनवरी से ३१ दिसंबर तक माना गया है। सदस्य चाहे जब बन सकते हैं। साहित्य सब सदस्यो को समान रूप से दिया जायगा। भूदान पत्रिका सदस्य बनने के माह से वर्ष भर चालू रहेगी।

५. पूरी जानकारी प्राप्त करने का तथा शुल्क भेजने का पता—

संचालक, **अ० भा० सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन**
राजघाट, काशी (बनारस)

नोट . जो सज्जन दूसरो को अपनी ओर से शुल्क देकर योजना का सदस्य बनावेंगे उनका पूरा शुल्क दस रुपया और जो स्वय सदस्य बनेंगे उनका आधा यानी पांच रुपया सपत्तिदान माना जायगा।